जन ज्ञान

(मासिक)

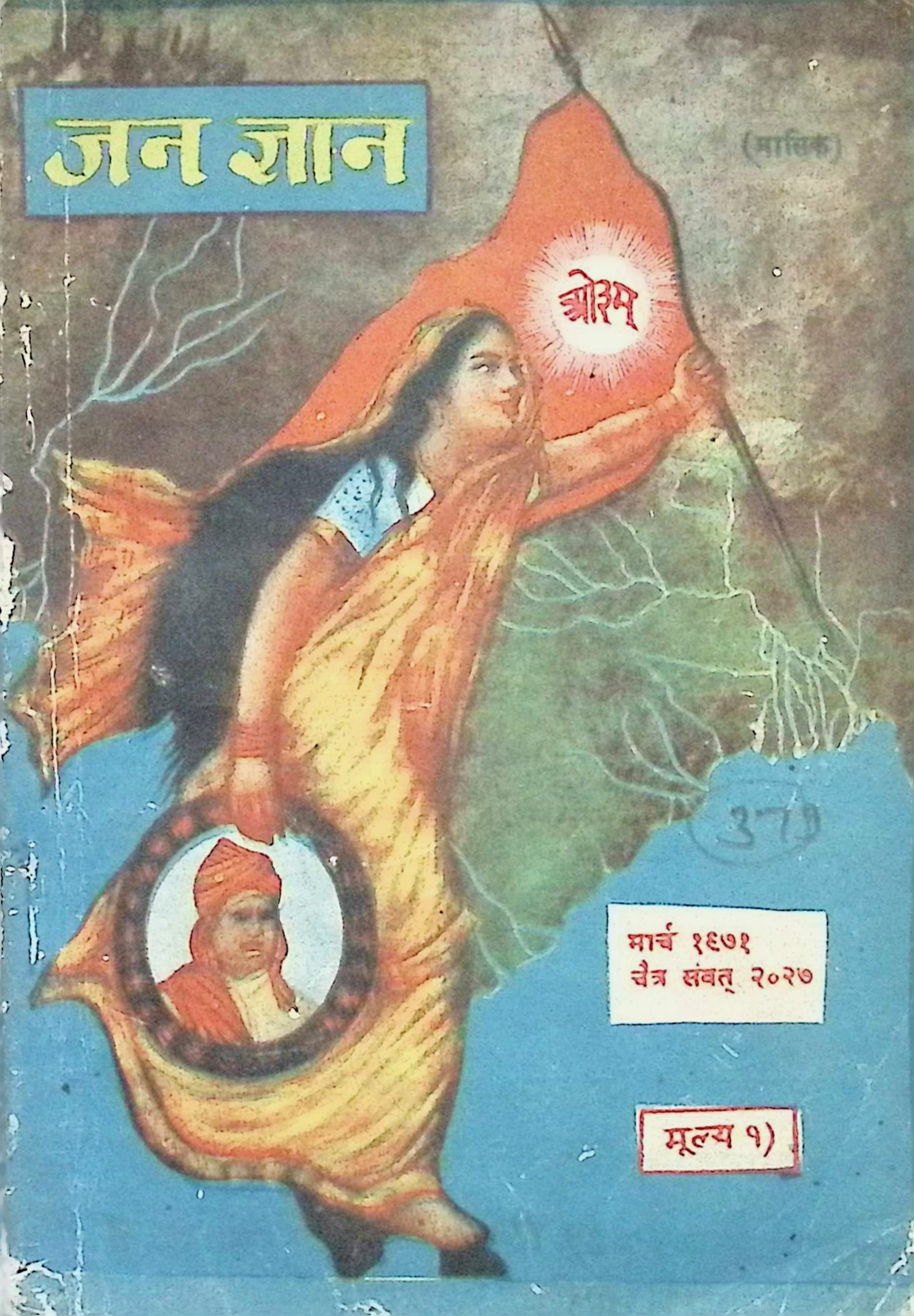

मार्च १९७१
चैत्र संवत् २०२७

मूल्य १)

इस अंक में पढ़िए

*

				पृष्ठ
१.	प्रभु-प्रार्थना	—जगदीश विद्यार्थी	—	३
२.	वेदोपदेश		—	४
३.	संपादकीय		—	६
४.	हृदय मंदिर से	—भारतेन्द्र नाथ	—	८
५.	उज्वल मणियां	—सज्जन	—	१०
६.	प्रणाम, ऋषि चरणों में		—	१८
७.	आर्य कन्या महाविद्यालय बड़ौदा		—	२१
८.	तुरन्त उपचार (लघु कथा)		—	२६
९.	स्वास्थ्य स्तंभ		—	३०
१०.	मुगल राज्य का एक फरमान		—	३२
११.	धर्मवीर श्री लेखराम		—	३४
१२.	आनन्द कैसे मिले?	—ओम्प्रकाश त्यागी	—	५३
१३.	सरदार नाहरखां	कहानी	—	६३
१४.	आर्यसमाज की विचारधारा	—स्व० गंगाप्रसाद उपाध्याय		६७
१५.	क्या अकबर महान था?	—पी० एन० ओक	—	८३
१६.	काशी शास्त्रार्थ	—वीरेन्द्र शास्त्री	—	१०४

साहित्य प्रकाशन के यज्ञ में उदारता पूर्वक अधिकाधिक दान दीजिये

भारतेन्द्र नाथ
संचालक

—संरक्षक—

चौ० प्रताप सिंह

—संचालक—

भारतेन्द्रनाथ

—संपादक—

राकेश रानी

★

धरती के प्रत्येक मानव के हृदय मन्दिर पर 'वेद-ज्ञान' की पावन पताका फहराने के लिए

आर्य जनता का
अपना
प्रतिनिधि प्रकाशन

'जन-ज्ञान'
(मासिक)

२५६७, हरध्यान सिंह मार्ग
(निकट ३१ नाईवाला)
करोलबाग, नई दिल्ली-५

फोन : ५६६६३६

वार्षिक मूल्य	१०)
एक प्रति	१)
विदेश में	एक पौण्ड

वर्ष ३ — अंक ११

प्रभु प्रार्थना

ओ३म् । इन्द्रश्च मृलयाति नो नः पश्चादघं नशत् । भद्रं भवाति नः पुरः ।। (ऋ० २।४१।११)

हे इन्द्र ! सर्व सुख दाता ! सर्व मंगलमय ! सर्व आनन्द प्रद ! सकल दुःख विनाशक प्रभो ! आप तो हमें सदा सुखी ही रखना चाहते हैं । सदा हमारा कल्याण ही चाहते हैं । फिर कभी जो दुःख हमारे सामने आ जाता है वह तो हमारे जन्म-जन्म के कर्मों के फलों के कारण हैं । यह हम जान गये हैं ।

ऐश्वर्य शालिन् ! आप तो हमारे लिये सदा सुख-समृद्धि के ही साधन रचते हैं । हम अपनी अज्ञानता से आपकी व्यवस्था, मर्यादा तथा नियमों को तोड़कर सुख को दुःख बना लेते हैं ।

हे सुखवर्षक ! सुखस्वरूप ! हमें निष्पाप, शुद्ध-पवित्र बनाओ । कृपालो ! कृपा करो, हमारे सामने भद्र कल्पना हो, भद्र धारणा हो, भद्र संकल्प हो । हम कभी पाप न करें, कभी दुःख के भागी न बनें । हमारे सामने आपका कल्याणमय भद्र आनन्द, एवं मंगलमय रूप ही हो । हमारा अन्तस्तल भी आपके सम्पर्क से सदा मंगलमय आनन्दमय तथा कल्याणाभिनिवेशी हो । यही विनय है, स्वीकार कीजिये । स्वीकार कीजिये । ●

—जगदीश विद्यार्थी

अपने प्रभु से !

मा न एकस्मिन्नागसि मा द्वयोरुत त्रिषु ।
वधीर्मा शूर भूरिषु ।

भगवन् हम एक बार, दो बार, तीन बार नहीं अनेक बार, (भूल जाते हैं) और अपराध कर बैठते हैं। प्रभो, नाश से हमें बचाओ ।।
(ऋक् ८, ४५, ३४)

मा सख्युः शनमा विदे मा पुत्रस्य प्रभूवसो ।
आवृत्वद् भूतुते मनः

हे उत्तम ऐश्वर्य वाले, मेरे सामने मेरे साथियों की हानि न हो। मेरे प्रति अपना ध्यान करो ।। (ऋ॒ ८, ४५, ३६) ।

न पापासो मनामहे नारायासो न जल्हवः ।
यदिन्निवन्द्रं वृषणं सचा सुते सखायं कृणवामहै ।।

हे प्रभो, अब हम तुम्हारी मित्रता को धारण करने के लिए यज्ञमय जीवन द्वारा (अपने-आपको पवित्र करते हैं)। अब हम में न पाप रहे, न कंजूसी रहे, न कोई टेढ़ापन रहे।। (ऋक् ८, ११) ।

अद्याद्या श्वःश्व इन्द्र त्रास्व परे च नः ।
विश्वा च नो जरितृन्त्सत्पते अहा दिवा नक्तं च रक्षिषः ।।

प्रभो, आज भी, कल भी और आगे भी तुम ही हमारे रक्षक हो। हम सदा तुम्हारी स्तुति करते रहें और तुम सदा दिन रात हमारी रक्षा करते रहो। (ऋक् ८, ६१, १७) ।

उपदेशक बनिए : आर्य समाज का प्रचार कीजिए

१३ अप्रैल से वैदिक साधनाश्रम यमुना नगर में

उपदेशक महाविद्यालय आरम्भ

हो रहा है। समस्त धर्म प्रेमी जनता व आर्य समाजों से अनुरोध है
कि वे योग्य छात्रों को प्रविष्ट कराने हेतु आवेदन करें।

१—छात्रों से कोई शुल्क नहीं।

२—शिक्षा-भोजन-निवास निःशुल्क।

३—हिन्दी का अच्छा ज्ञान ८वीं या १०वीं, कक्षा के समकक्ष आवश्यक।

४—एक वर्ष का पाठ्य क्रम : उत्तीर्ण होने पर १५०—२००) मासिक पर नियुक्ति का प्रबन्ध।

५—केवल १० छात्र प्रविष्ट किए जाएंगे।

आवेदन पत्र १२ मार्च तक आ जाने चाहिएं।

सत्यानन्द सरस्वती
कुलपति

दयानन्द उपदेशक महाविद्यालय,
वैदिक साधनाश्रम यमुनानगर, (अंबाला)

धर्म के लिए जियो, मरो !

आज जनतंत्र पर संकट है न स्वतंत्रता पर, सचमुच अगर कोई संकट है तो 'धर्म' पर। पिछले २२ वर्षों से हम स्वतंत्र हैं पर धर्म को मारकर। अधर्म के साथ तो स्वतंत्रता भी अभिशाप बन गयी है। इसलिए आज की प्रमुख समस्या 'धर्म' रक्षा की है।

धर्म से हमारा तात्पर्य मत-मतान्तरों और पूजा पाठ से नहीं अपितु उन मूल भावनाओं से है जिन से मनुष्य "मनुष्य" बनता है। पशुता-गुंडापन और नक्सली प्रकृतियों का उत्तर केवल 'धर्म' है। 'धर्म' वह शक्ति है जिस की रक्षा करने से सब की रक्षा स्वयं हो जाती है और जिसके नाश में सर्वनाश कोई रोक नहीं सकता।

आज उसी धर्म पर संकट आया है। राम-कृष्ण और ऋषि मुनियों की पावन परंपरा मिटाकर आसुरी शक्तियां देश में "अधर्म-राज्य" स्थापित कर चुकी हैं। आग की लपटों में मेरा-आपका प्यारा देश धू.धू कर जल रहा है। इस आग को बुझाने का उपाय है 'धर्म' की पुनः प्राण प्रतिष्ठा।

भारत को न समाजवाद चाहिए न साम्यवाद, यहाँ न 'अ' राज्य चाहिए न 'ब' राज्य, यहाँ तो 'धर्म-राज्य' चाहिये, वह राज्य जिसे गांधी जी राम-राज्य और महर्षि दयानन्द "आर्य राज्य" कहते थे।

किन्तु जब चारों ओर रावण की विचार धारा फैल रही हो, कंस की कुटिलता जब राजनीति कहलाती हो, जब पाप ही पुण्य बन गया हो, तब धर्म की रक्षाकी कौन सोचे ? बड़े-बड़े धर्म धुरीण राजनीति-ललना के मोह पाश में बंधे हो चुके हैं। देश के मन मस्तिष्क स्वार्थ की विषधारा से प्रभावित हैं, फिर अधर्म के विरुद्ध युद्ध घोषणा कौन करे ?

और कोई मार्ग नहीं; कोई उपाय नहीं। भारत को बचाना है तो एक बार फिर सुदर्शन चक्र संभालना ही होगा। अर्जुन का नाम लेने वालों को मोह निद्रा भगा कर गांडीव फिर उठाना ही होगा। शिवा, प्रताप की तरह सर्वस्व दांव पर लगा धर्म की रक्षा के लिए एक बार तो शंख फूंकना ही होगा। हर घर में जहर आ गया है। सर्वत्र आसुरी विचारधारा छा गई है, इसलिए सब कुछ नए सिरे से बनाना ही होगा।

भारत मां यदि निःसन्तान नहीं हुई तो उस के ५० करोड़ बेटों में से ५ बेटे भी क्या मां की रक्षा के लिए जीवन नहीं दे सकते ? धर्म की स्थापना के लिए क्या पांच प्राण अपनी आहुति नहीं दे सकते ? वेद-सत्य-धर्म की पुकार में क्या इतनी शक्ति नहीं कि वह हमें जगा सके बलिदान के लिए।

तिल-तिल कर जलने के लिये तैयार आर्य श्रेष्ठ ५ व्यक्ति जिस दिन सिर पर कफ़न बांध धर्म का बिगुल बजा अधर्म की समाप्ति के लिये युद्ध घोषणा करेंगे उस दिन फिर वह सूरज उगेगा जो राम-राज्य के प्रभात में निकलता था।

भोग के प्रवाह में अध्यात्म की गंगा बहाने वाले भगीरथ चाहिएं। महा-काल से टकराने वाले वीर श्रेष्ठ नर पुंगव चाहिएं जो भारत का भाग्य बदलने के लिए अपने को मिटाने को, जीवित जलाने को तैयार हों।

काल रात्रि का अंत कब होगा ? अधर्म-अज्ञान कब मिटेगा, कब भारत के हर घर आंगन में शान्ति और आनन्द नृत्य करेगा ? इन सब प्रश्नों का उत्तर वीर दे सकते हैं। वीर वह जो धर्म के लिये जियें और धर्म के लिए मरें। मरना तो है ही फिर क्यों न हम अमर हो जायें धर्म के लिए—सोचिए तो सही—

—राकेश रानी

प्रकाशकादि विवरण फ़ार्म—४

१. प्रकाशन स्थान	१५६७ हरध्यान सिंह मार्ग नई दिल्ली-५
२. प्रकाशन अवधि	मासिक
३. मुद्रक का नाम	राकेश रानी
(क्या भारत का नागरिक है ?)	हां
पता	१५६७ हरध्यान सिंह मार्ग नई दिल्ली-५
४ प्रकाशक का नाम	राकेश रानी
(क्या भारत का नागरिक है ?)	हां
पता	१५६७ हरध्यान सिंह मार्ग नई दिल्ली-५
५. संपादक का नाम	राकेश रानी
(क्या भारत का नागरिक है ?)	१५६७ हरध्यानसिंह मार्ग नई दिल्ली-५
६. उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार-पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों।	जन-ज्ञान-प्रकाशन नई दिल्ली

मैं राकेश रानी एतद्वारा घोषित करती हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सत्य हैं।

ता० १. ३. ७१ राकेश रानी प्रकाशक

मैं हृदय मन्दिर से लिख रहा हूँ ~ भारतेन्द्र नाथ

वेद प्रचार नहीं, एम. पी. बनाना हमारा एकमात्र लक्ष्य है ?

सारे आर्य समाज से, आर्य जनता से, नेताओं उपदेशकों, संन्यासियों और विद्वानों से मैं सीधे तौर पर यह पूछना चाहता हूं कि क्या हमारा परम धर्म अब M. P. बनाना बन गया है ?

क्या हम वेद प्रचार छोड़कर अपनी सारी शक्ति M. P. प्रचार में लगा कर आर्य समाज की सेवा कर रहे हैं ? आर्य समाज का तीसरा नियम बदलने का समय आ चुका है उसमें परिवर्तन कर लिखना चाहिए, आर्य समाज अपनी सारी शक्ति अब राज्य स्थापना में लगाएगा —

वेद तो Out of Date (पुरानी वस्तु) हो चुके हैं। उन पर धन-समय बरबाद करना व्यर्थ है। अब तो काम केवल एक रह गया है, राज्य स्थापित करना। सब भूल जाओ और कूद पड़ो राजनीति में, अपने घर में आर्य हों या न हों, हम आर्य बनें या न बनें, पास पड़ोस में अनार्य जोटों से रहें। हमें कोई चिन्ता नहीं, हमें तो 'राज्य' स्थापित करना है। किसी न किसी के टिकट पर चुनाव लड़ना है। हम किसी सभा के कितने ही बड़े अधिकारी हों, उसकी चिन्ता नहीं, हमने अपने प्रभाव का प्रयोग कर संसद् में जाना है।

आर्य समाजों ने भी वेद प्रचार के लिए धन देना बंद कर चुनाव प्रचार में सब कुछ स्वाहा करने का निश्चय किया है। यही धर्म है, हमारा यही लक्ष्य है आर्य समाज का, सब कुछ भूल जाओ और चुनाव लड़ो। जीतो चाहे हार जाओ पर चुनाव लड़ो।

मैं यह सब कुछ देखता हूँ तो आश्चर्य में पड़ जाता हूं। कहां से कहां पहुँच गया आर्य समाज ? कहां जाना था और कहां चल पड़े हम सब···और अगर हम जैसा कोई सत्य लिखे तो फिर बाइकाट की धमकियां, विरुद्ध प्रचार—

बहुत सोचता हूं पर सोचता ही रह जाता हूँ—आर्य नामधारी व्यक्तियों के पतन को रोकने का ढंग नज़र नहीं आता। 'वेद' के प्रति श्रद्धा नहीं, आदर नहीं, फिर भी हम 'आर्य' हैं। आपस में लड़ते हैं फिर भी हम "आर्य-नेता" हैं। आपस में लड़ो या चुनाव में लड़ो, केवल यह ही दो काम रह गए हैं।

सच तो यह है कि आज दयानन्द के अनुयायी ही दयानन्द के दिव्य स्वप्नों की हत्या कर रहे हैं। जो शक्ति जन-जन के विचार बदलने में लगनी

चाहिए थी वह चुनाव और मुक़दमों में नष्ट हो रही है।

पाठक गण ! आप नाराज न हों, थोड़ी शांति रख ईमानदारी से सोचें तो सही, क्या जो कुछ हो रहा है इसीलिए आर्य समाज की स्थापना हुई थी ?

हम आर्य समाज की सारी शक्ति देश में वैदिक विचार धारा फैलाने में लगाना चाहते हैं। सादगी—त्याग—ईमानदारी और चरित्र का पाठ पढ़ाने के लिए दयानन्द के वीरों को ग्राम-ग्राम, नगर-नगर में ओ३म् पताका फहराते हुए देखना चाहते हैं। आर्य समाज मन्दिरों में वेद-प्रचार का केन्द्र बने, आर्य नेता दिन रात वेद-प्रचार की योजनाएं बनाएं, जनता उनकी पूर्ति करे और जहां भी सुनें "ऋषि दयानन्द की जय" ध्वनि सुनें, यह हमारी इच्छा है। हम जानते हैं कि इस इच्छा की पूर्ति बहुत कठिन है। फिर भी हम अपने सर्व सामर्थ्य से वर्तमान आर्य समाज को ऋषि दयानन्द की राह पर चलाने के लिए कर्म करते रहेंगे। प्रवाह हमारी वाणी को नहीं बदल सकता। हम रहें या न रहें पर दयानन्द का रास्ता, वेद-प्रचार का रास्ता हम नहीं छोड़ेंगे।

इसी अंक में ध्यान से पढ़िए स्व० पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय का लेख, हमने इसे पृथक भी छपा दिया है। यह लेख उन्होंने सार्वदेशिक सभा के मंत्री होने के नाते लिखा था जो आर्य जगत् के लिए सही मार्ग दर्शन है। जो भी इससे सहमत हों वह इसे अधिकाधिक बाँटें, यह हमारी इच्छा है। पृथक टैक्ट रूप में भी छप चुका है।

प्रभु हम सभी को बुद्धि दें ताकि हम ऋषि दयानन्द को समझ उनके लक्ष्य को पूरा करने में जीवन लगा सकें। हमारी पथ भ्रष्टता से आज आर्य समाज भवनों से ऋषि की आत्मा चली गयी है। वह फिर लौटनी चाहिए और आर्य समाज का पूरा बल केवल वेद-प्रचार में लगना चाहिए।

आर्यो ! आओ भारत के ५० करोड़ भारतीयों को हम आर्य बनाने में लग जाएं। संसार तो बहुत बड़ा है। कम से कम अपने देश को तो आर्य बनाएं।

काश कि हम सोच सकते ?

ऋषि दयानन्द का अंग्रेजी जीवन चरित्र

छप रहा है। संभवतः अप्रैल के प्रथम सप्ताह में हम उसे भेज सकेंगे। ऋषि जीवन अत्यन्त महत्वपूर्ण और दायित्व से छपना चाहिए। अतः इस सम्बन्ध में कोई पत्र व्यवहार अभी न करें। यदि पहले प्रकाशित हो गया तो हम सूचना भेज देंगे—

—भारतेन्द्र नाथ

उज्ज्वल—मणियां

सज्जन, कुलथम

१. ध्यान-पूर्वक अध्ययन निश्चय ही लाभदायक और सुखदायक होता है। यह होता है आदि से अन्त तक ग़ौर से समझ कर और दिल देकर पढ़ना।
—सज्जन

२. ऐ विद्वानो ! गिरे हुए मनुष्यों को ऊपर उठाओ ! —वेद भगवान्

३. वही उन्नति कर सकता है, जो स्वयं अपने को उपदेश देता है !
—स्वामी रामतीर्थ

४. मेरा यह हाथ खुशक़िस्मत हो, मेरा यह हाथ अत्यन्त ही खुशक़िस्मत हो। मेरा यह हाथ सारी दुनिया के लिए सुख का साधन हो और मेरा यह हाथ हर एक इन्सान को छूता हुआ तन्दुरुस्ती देने वाला हो !
—वेद भगवान्

(क) मुहब्बत, नेकी और बुजुर्गी का निचोड़ यह है कि इन्सान दूसरों की भलाई के लिए तकलीफ़ उठाए ! —हरबर्ट स्पेंसर

(ख) वह ज़बान बहुमूल्य है, जो ईश्वर की और मानव-सेवा की बातें कहती है ! —बिलावल म०५

(ग) सत्य सर्वश्रेष्ठ कि नाम सर्वेश ! तो उपदेश 'सत्य', कितना ही योग्य ! कितना ही मान्य ! भाव : जो पुरुष सत्यासत्य का खंडन-मंडन करे, वह क्यों नहीं योग्य व मान्य ! खंडन-मंडन क्यों ? इसलिए कि सत्य से ही सर्व-कल्याण ! असत्य करे सबों को परेशान—कल्याण तो एक ओर !
—सज्जन

५. सब से उत्तम रास्ता कौन-सा है ? उत्तम ही सोचना और बोलना। आइये, उत्तमता की गहनतम पेचीदगियों को समझें। उसके बाद ही हमें सांसारिक सुख और सद्गति मिल सकेगी ! —सज्जन

६. सर्वप्रथम वही पहचान नाना सुख जिस किये प्रदान ! वही एक सत्य, सुमरो उसे नित्य; चाहो सुख ही सुख यदि नित्य ! —सज्जन

(क) ब्रह्मा से लेकर तिनके तक सभी पदार्थ माया से लिप्त हैं ! एक परब्रह्म ही सत्य है। उससे जान कर जीव सुखी होता है ! —शास्त्र

(ख) "भगवत् दर्शन करना ही सबसे बड़ा लाभ है। भगवान् (ईश्वर) की पूजा को छोड़ कर जो लोग दूसरे की पूजा करते हैं, वे महामूर्ख हैं।

(ग) "सत्य एक ही है, लेकिन उसे लोग भिन्न-भिन्न तरीके से वर्णन करते हैं !"

(घ) सुन्दरता की खोज में हम चाहे सारे संसार का चक्कर लगा आयें, अगर वह हमारे अन्दर नहीं है तो कहीं नहीं मिलेगी ! —इमरसन

७. "सत्य का ज्ञान न होना ही सारे कष्टों और दुःखों का मूल कारण है !"

(क) सारे संसार का धर्म तो वास्तव में एक ही और वह है मानव धर्म रूप 'एक सत् धर्म' अर्थात् वेद धर्म ! —सज्जन

(ख) "रोज़ी का फ़िक्र इन्सान को ज़रूर है, मगर इतना मगन न हो कि ईश्वर को भूल जाये !"

(घ) सर्वेश्वर (एकेश्वर) सत्य ! यह तथ्य सभी को स्वीकार ! सत्पुरुष रूप-सत्य। इस से भी किसे इन्कार ? सर्वेश्वर—आज्ञाएं, सत्पुरुष—शिक्षाएं। निश्चय ही सत्य दवाएं ! हल जिन से हो जाएं। संसार की सारी समस्याएं ! विलम्ब केवल आचरण करने का ! —सज्जन

८. जीवन के सभी व्यवहारों को शुद्ध बनावो, यदि सुखी और सफल जीवन चाहते हो ! —सज्जन

(क) खाक के पुतले को ग़रूर ज़ेब (शोभा) नहीं देता ! —शेख सादी

(ख) "अपने आप को आलम (विद्वान्) मत समझो, क्योंकि इल्म के समुंदर का कोई किनारा नहीं !"

(ग) "खूबसूरत शरीर पर ग़रूर न करो, क्योंकि यह नष्ट हो जाने वाला है !"

(घ) जितनी भी खराबियां युद्ध, जुर्म वग़ैरह हो रहे हैं, सब नेक दिली एवं शुभ विचार न होने से! यह बुनियादी चीज़ जब तक न होगी, तब तक कोई भी विधि कारगर न होगी ! गवर्नमेंटें चाहे कितना भी कुछ करें! यह चीज़ होने से ही सब खराबी दूर होगी ! देख लें ! —सज्जन

संसार के प्रत्येक व्यक्ति तक वेद का संदेश पहुंचाने के लिए

सभी को ऋषि दयानन्द के चरणों में झुकाने के लिए

मत-वाद और समस्त जाति-भेद मिटा
मनुष्य को मनुष्य बनाने
और

धर्म की रक्षा के लिए

जन-ज्ञान द्वारा आयोजित

वेद प्रचार यज्ञ में उदारता पूर्वक आहुति भेजें

अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ जन्म के लिए आपके सहयोग की प्रतीक्षा में हैं

—भारतेन्द्र नाथ

जन-ज्ञान प्रकाशन द्वारा आयोजित

वेद प्रचार यज्ञ में प्राप्त आहुतियां

१.	श्री ईश्वर सिंह आर्य नैटाल (द. अफ्रीका)	५००)
२.	श्रीमती बुद्धिदेवी जी नैटाल (द. अफ्रीका)	१००)
३.	रा. सा. चौ. प्रताप सिंह जी, करनाल	३५०)
४.	स्त्री आर्य समाज विधान सरणी, कलकत्ता	१००)
५.	श्रीमती संतोष कुमारी जी, ऊधमपुर	५०)
६.	श्री कन्हैया लाल जी, गोरखपुर	११)
७.	श्रीमती दयावती बनाती, दिल्ली	२५)
८.	श्री सेवक राम यात्री, नया नांगल	६)
९.	श्री लोकनाथ पंडित, आर्य समाज परेव	११)
१०.	श्री चतुर्भुज जी, मन्दसौर	११)
११.	श्री हरिदास नारायण, औरंगाबाद	११)
१२.	श्री प्रकाशचन्द जी, नादौन	४)
१३.	श्री हेतराम जी, अलवर	४)
१४.	श्री आशाराम पांडे, मिर्जापुर	११)
१५.	श्री ओम्प्रकाश साहू, आसनसोल	११)
१६.	श्री सतप्रसाद सिंह, टंडवा	४)
१७.	श्री पुष्कर लाल आर्य, कलकत्ता	११)
१८.	श्री भगवान् दास जी, कलकत्ता	११)
१९.	श्री गोपी नाथ, बहरामघाट	११)
२०.	श्री नरेन्द्र एस. गुप्त, बम्बई	१५)
२१.	श्री नव जीवन वस्त्र भंडार, निजामाबाद	१५)
२२.	श्री मुंशीरामजी, जबलपुर	२०)
२३.	पं० धर्मदेव जी, ज्वालापुर	४)
२४.	श्री मोहन लाल सत्यनारायण, सलकिया, हावड़ा	११)
२५.	श्रीमती यशोदा देवी, अमृतसर	५०)

१० रु० देने वाले महानुभावों की सूची

(१) श्री बी० पी० गुप्त डालमियांनगर। (२) श्री लाखनसिंह बिल्टीगढ़ (३) श्रीमती चन्द्ररानी मोंगा सहारनपुर। (४) श्री तपस्वीराम नरकटियागंज। (५) श्री जगन्नाथप्रसाद जमालपुर। (६) श्री कृष्णमूर्ति बुढ़ाना। (७) श्री कमलकृष्ण अमृतसर। (८) आर्य समाज वारशिया कालोनी बड़ौदा। (९) डा० जी० एन० भटनागर हरगाँव। (१०) श्री संगमलाल बूधीपुर। (११) श्री केदारनाथ मिश्र कलकत्ता। (१२) श्री मोहनलाल बैजल मैनीपुर (१३) श्रीमती ज्ञानदेवी जी स्त्री आर्यसमाज कुन्दरखी। (१४) श्रीमती मायावती देवी जयपुर। (१५) श्री रामधन आर्य समाज कुन्दरखी। (१६) श्री वंशीधर फतेहाबाद। (१७) श्री एम० सी० राठौर सीहोर। (१८) श्री अक्षयकुमार मेहता दिल्ली। (१९) श्रीमती चंचल देवी दिल्ली। (२०) श्री मगनभाई एच० भट्ट, जामनगर।

५) देने वालों की सूची

(१) श्री आई० पी० गुप्ता दिल्ली। (२) दीपश्री मेहता दिल्ली। (३) श्री सत्यप्रकाश दिल्ली। (४) श्री विनोद झींगन दिल्ली। (५) श्री रतनचन्द्र शर्मा करनाल। (६) श्री विशम्भर सहाय वकील। (७) श्री बजरंगवली। (८) श्री सु०व० काले परली बैजनाथ। (९) श्री रामेश्वरानन्द दिल्ली। (१०) श्री आशाराम नानकचन्द सूद यमुनानगर। (११) श्री प्रह्लाद कुमार हिण्डौन। (१२) श्री मोहन अप्पा बीदर। (१३) श्री रघुनाथ प्रसाद शर्मा अकबरपुर। (१४) श्री रामेश्वर दयाल समालखा। (१५) श्री रूपराम गहलौत बोंगला। (१६) श्री उत्तमसिंह गंगाराम अहमदाबाद। (१७) श्री वेणीप्रसाद आर्य कनखल। (१८) श्री ठाकुरप्रसाद वर्मा बाँसी। (१९) श्री ओम्प्रकाश आर्य समाज सदर बरेली। (२०) श्री राजपुरी नई दिल्ली। (२१) श्री ओम्प्रकाश राकेशकुमार सिकन्दराराऊ। (२२) श्री जितेन्द्र जी बवसर। (२३) श्री सुन्दरलाल मथुरी मुहाल। (२४) श्रीमती वीरबाला कालरा नई दिल्ली। (२५) श्री इन्द्रसेन मलिक जालन्धर। (२६) श्री प्रद्युम्न कुमार बड़ौदा। (२७) डा० केशवदेवसिंह फ़ीरोजाबाद। (२८) श्री

प्रीतमसिंह चौकड़ा। (२९) श्री हरिश्चन्द्र रामपुर। (३०) श्री शांतिप्रकाश गोयल रामपुर। (३१) श्री चन्द्रभूषण इटारसी। (३२) लक्ष्मणपुरी गोस्वामी खोड़। (३३) श्री जयन्त वी० कोटेच्चा पोरबंदर। (३४) श्री भक्तराम शर्मा सिघवांविट। (३५) श्री इन्द्रदत्त जी अमृतसर। (३६) श्री जे० के० विग अमृतसर। (३७) श्री लक्ष्मीनारायण अशोकनगर। (३८) श्री इन्द्रसिंह सोलंकी अशोकनगर। (३९) श्री प्रह्लादराय पचोरिया बम्बई। (४०) श्री ए०सी० पटेल बम्बई। (४१) श्री कुंजलाल सिरसौव। (४२) श्री नेतराम नायक C/o A.P.O.। (४३) श्री महेशदत्त श्रीवास्तव अलीगढ़। (४४) श्री इन्द्रदत्त गुलाटी सूरत। (४५) श्री गुरुदासराम मोहिन्दपुर। (४६) श्री रामेश्वर कंबोज हरीपुर। (४७) श्री कृष्णलाल नया नांगल। (४८) श्री एस० के० आजाद धनबाद। (४९) श्री नट्टूभाई शाह उर्फ अमरसिंह नडियाद। (५०) श्री रामचन्द्र शाक्य जगदलपुर। (५१) श्री धर्मपाल सूद देहरादून। (५२) श्री रामनारायण दुबे ग्वालियर। (५३) श्री मिश्रीलाल गुप्ता आलीराजपुर। (५४) श्री रामवचन चौधरी वेवाना। (५५) श्री रघुनाथराय अहमदाबाद। (५६) श्री पृथ्वीचन्द मुश्कीपुर। (५७) श्री नरेन्द्रकुमार गुलावठी। (५८) श्री रामलुभाया दोराहा। (५९) श्री धर्मदास आनन्दप्रकाश अबंहटा। (६०) श्री बोधराज चौधरी रायपुर। (६१) श्री मोहनलाल देवबन्द। (६२) श्री हरिराम सिंह बिन्दकी। (६३) श्रीचन्द बालोद। (६४) श्री मकरन्द शर्मा बराड़ी। (६५) श्रीमती सुमित्रा कंसल नैनीताल। (६६) श्री मुकेश कुमार समस्तीपुर। (६७) आर्य समाज मुरादाबाद। (६८) श्री गयाप्रसाद वर्मा आंरा। (६९) श्री वासुदेव ओबरा। (७०) केशवलाल राठी सवाई माधोपुर। (७१) श्री हरिओम् गुप्त धमिश्री। (७२) श्री यमुनाप्रसाद सिंह जमशेदपुर। (७३) श्री रंजनप्रसाद धमनी बाजार। (७४) श्री शेरसिंह खिलड़ा। (७५) श्री गयाप्रसाद तिरवा। (७६) बुलबुले इंजीनियरिंग वर्क्स गुलबर्गा। (७७) श्रीमती शृंगारवती मुफ्तीपुर। (७८) श्री प्रतापसिंह राठौर चोतेड़ा। (७९) श्री राजवीर आर्य वारंगल। (८०) कुंवर शिवभूषण सिंह किशनगढ़। (८१) श्रीप्रताप बहादुरसिंह रामपुर। (८२) श्री तरसेमलाल गुलाटी बरनाला। (८३) श्री शालिग्राम राजाराम बसैये औरंगाबाद। (८४) श्री थानसिंह भाटी दसूहा। (८५) श्री महेन्द्रनाथ मंडल पथना। (८६) श्री रामरख पुरोहित

पीपाड़। (८७) श्री गिरधारीलाल टोड़ी फतेहपुर। (८८) श्री लखनप्रसाद गणेशप्रसाद जर्वे। (८९) श्री सत्यपाल सिंहल इन्दौर। (९०) श्री अशोक कुमार C/o A.P.O.। (९१) श्री जयसिंह शिकारपुर। (९२) श्री हरिकिशोर गुप्त सरौली बुजर्ग। (९३) श्री एच० एस० मलिक यमुनानगर। (९४) श्री बांकेबिहारी गुप्त नौबतपुर। (९५) श्री बहोरी सिंह नौअरी। (९६) चौ० केसाराम जासूदा। (९७) श्रीराम आसरे हाथीदह। (९८) श्री रामपत राजेन्द्र कनीना। (९९) श्री रामेश्वर प्रसाद पुरानी बाजार। (१००) वैद्य डाह्यालाल हरिलाल वोरावाड़। (१०१) श्री सेवकराम यात्री नया नांगल। (१०२) श्री हुक्मसिंह दौराला। (१०३) श्री दुनीचन्द ठाकुर लगौटी। (१०४) श्री बंसीधर तिवारी घारूर। (१०५) श्री रावलदास रायपुर। (१०६) श्री छीतरमल हरसौली। (१०७) श्री प्यारेलाल सेंटाखेड़ा। (१०८) श्री बेनीप्रसाद राज़ाराम माकुम। (१०९) श्री वेदकुमार वेदालंकार कोल्हापुर। (११०) श्री लालजी आर्य हिरणपुर। (१११) श्री ध्रुवकुमार असरगंज। (११२) श्री शशिमोहन गड़हरा। (११३) श्री पन्नालाल कलकत्ता। (११४) श्री एस० आर० गुप्त बम्बई। (११५) डा० शिवनन्दन-प्रसाद रजौली। (११६) श्री के० एस० भगौलीवाल दुर्ग। (११७) डा० नारायणराव लातूर। (११८) श्री मोहनलाल उपाध्याय निंबाहेड़ा। (११९) वैद्य सुखीलाल दाहखेड़ी। (१२०) श्री खेमचन्द सर्राफ संबलपुर। (१२१) श्री श्यामलाल तम्बाकू वाले कानपुर। (१२२) श्री चन्द्रशेखर आर्य समाज आसनसोल। (१२३) श्री परमात्मासहाय सक्सेना बूंदी। (१२४) श्री सत्यदेव शर्मा आगरा। (१२५) श्री हरिश्चन्द्र वर्मा पूरे दरियावलाल। (१२६) डा० पवनकुमार कांटावांजी। (१२७) श्री बिशम्भर सहाय रायजादा मैनीपुर। (१२८) श्री ओम्दत्त भारद्वाज सुखालिया। (१२९) श्री ज्वालासहाय वानप्रस्थी मंडी अटेली। (१३०) श्रीमती उमारानी मवाना-कलां। (१३१) श्री मंगलदेव सबलाना। (१३२) श्री भद्रसेन शर्मा गंगानगर। (१३३) कुं० फतेहसिंह राठौर निम्बलाना। (१३४) श्री दयानन्द श्रीवास्तव वलीपुर। (१३५) डा० सेवकराम नया नांगल। (१३६) श्री रामजीराम कानपुर। (१३७) श्रीराम आर्य कुरूद। (१३८) श्रीचन्द वैद्य गुड़गांव छावनी। (१३९) श्री उंडेरालाल उदयपुर। (१४०) श्री केदार-नाथ खंडवा। (१४१) श्री विजय के० मल्होत्रा अमृतसर।

सभी का हार्दिक धन्यवाद।

—राकेश रानी

जाड़ों में सेवन करें

बादाम पाक

शरीर को स्वस्थ बनाता है

मूल्य १०० ग्राम	—५)८०
मूल्य २०० ग्राम	—११)

केसर

असली केसर हमसे प्राप्त करें।

मूल्य २॥ ग्राम	—६)८०
मूल्य १ ग्राम	—२)९०

बादाम तेल

मस्तिष्क के लिए अनुपम है। आँतों की रुक्षता दूर करता है

मूल्य २५ मिली लीटर	—६)५०
मूल्य ५० मिली लीटर	—१२)५०

हरे आँवलों से निर्मित

च्यवनप्राश विशिष्ट

पुरानी खांसी, निर्बलता व दमा आदि में विशेष लाभदायक है। यह पाक पुरानी खाँसी को शीघ्र ही आराम पहुंचाता है।

मूल्य २०० ग्राम	—४)९०
मूल्य ४०० ग्राम	—८)७५

शीत ऋतु में सेवन कर शरीर पुष्ट करें

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी P.O. गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार

प्रणाम ! ऋषि चरणों में…

धरती पर प्रवाह के साथ बहने वाले तो बहुत मिलेंगे पर प्रवाह के विपरीत चल कर, संपूर्ण प्रवाह को ही बदलने का साहस खोजने पर विरले ही व्यक्तियों में मिलेगा। जो ऐसा कर सकें वह सचमुच महापुरुष हैं और ऐसे ही थे हमारे गुरु देव दयानन्द महर्षि !

हम ने बहुत गहराई में पैठ कर दयानन्द को समझने का यत्न किया है, और जितना समझा है उसे समझकर हम दयानन्द के भक्त बनकर सभी को उनके चरणों में लाना अपना कर्तव्य मान बैठे हैं। हमारी अगर कोई चाह है तो केवल यह कि सारी धरती के लोग ऋषि के गीत गाने लग जाएं।

हम संसार के प्रत्येक व्यक्ति को बताना चाहते हैं कि दयानन्द क्या है, और क्या है उसका सन्देश…… हम भले ही साधन विहीन और एकाकी हों किन्तु फिर भी हम निराश नहीं हैं और वाणी से नहीं अपने जीवन के प्रत्येक स्वांस से, संपूर्ण सामर्थ्य और भावना से "ऋषि दयानन्द की जय" के लिये संघर्ष करते रहेंगे।

हमें न राज्य चाहिए, न पद, न धन, चाहिए न मान, हमारा जीवन रहे या न रहे किन्तु कभी भी मार्ग से हम भटकें नहीं; दयानन्द की भावना पूर्ण करने में लगे रहें, अपने प्रभु से हमने यही माँगा है और चाहा है कि हमारे साथ कुछ दयानन्द के अनुयायी आएं और अपने को मिटा कर दयानन्द की विजय पताका लहराएं।

अभी हमारी चाह पूरी नहीं हुई, शायद हम में कोई कमी हैं' हम दूसरों को दोष क्यों दें ?

फिर भी हम उस दिन की प्रतीक्षा करेंगे जब कुछ पवित्रात्मा दयानन्द के लिए ही जीने और मरने का निश्चय करेंगे।

प्रभु हमें शक्ति दे कि हम अपने को गुरुदेव दयानन्द के चरणों में प्रणाम कर श्रद्धांजलि अर्पित करने के योग्य हो सकें।

नयी धरती पर नया सवेरा लाने के लिये हम जियेंगे, मरेंगे लड़ेंगे, विजय वरेंगे। दयानन्द के चरणों में प्रणाम कर हम संसार को ऋषि के चरणों में झुकाने का व्रत करते हैं।

—भारतेन्द्र नाथ

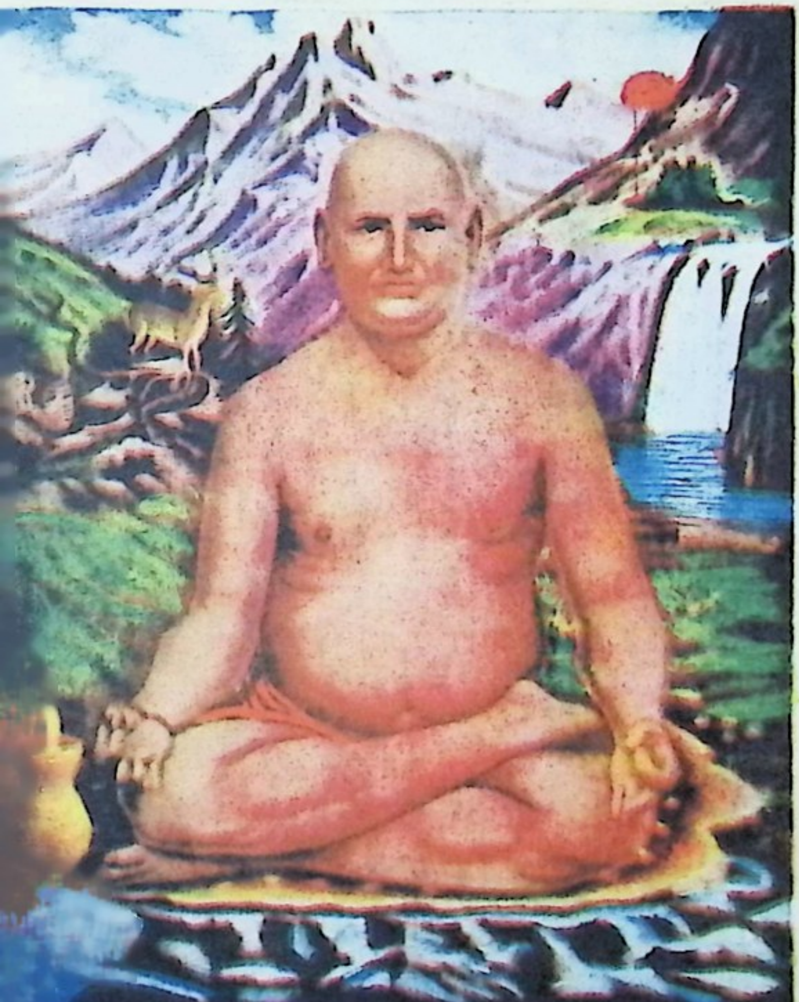

योगीराज
महर्षि दयानन्द सरस्वती।

क्या आप इतना भी नहीं कर सकते ?

"जन-ज्ञान" का संचालन उस के सदस्य ही कर रहे हैं और उन्हीं के प्रयत्नों से ही संपूर्ण कार्य किये जा रहे हैं ।

किन्तु कभी-कभी आलस्य प्रमाद से हमारे कतिपय सदस्य चन्दा समाप्ति की सूचना मिलने पर न धन भेजते हैं, न उत्तर देते हैं और वी०पी० भेजी जाती है तो लौटा देते हैं।एक वी० पी० पी० लौटाने में १) ५० की हानि होती है ।

अतः अच्छा तो यही है कि धन समाप्ति की सूचना मिलते ही आप १० रू० मनीआर्डर से भेज दें और यदि किसी कारणसे सदस्य न रहना चाहें तो दस पैसे खर्च कर एक कार्ड भेज कर हमें सूचित अवश्य कर दें।

वस्तुतः हम 'जन-ज्ञान' के ऐसे सदस्य चाहते हैं जो इसे अपना समझें। इस की उन्नति के लिए यत्नशील हों और इस के द्वारा महर्षि की लक्ष्य पूर्ति के लिए प्रयत्नशील हों । जो अपना कार्य समझ इस का प्रचार करें ।

'जन-ज्ञान' के सदस्यों पर ही इसकी प्रगति और उन्नति निर्भर है । अतः यह साधारण सा सहयोग तो प्रत्येक सदस्य अवश्य ही दे कि चन्दा समाप्तिकी सूचना मिलते ही **या तो धन भेज दें या एक कार्ड डालकर मना कर दें।**

आप का यह साधारण सा सहयोग हमारे लिए बहुत बड़ा सहायक होगा । आशा है कि सभी इस ओर ध्यान देंगे ।

विनीता

राकेश रानी संपादक

केवल जन-ज्ञान के सदस्यों के लिए

संध्या-योग

वैदिक अध्यात्म व योग विद्या का अनुपम ग्रन्थ स्व० ब्र० योगीराज श्री जगन्नाथ जी पथिक लिखित

२०) के स्थान में १०) में

आदेश में ग्राहक नम्बर अवश्य लिखें : धन अग्रिम भेजें। डाक व्यय २)

जन-ज्ञान प्रकाशन

१५६७. हरध्यानसिंह मार्ग नई दिल्ली-५

वेद विज्ञान का भंडार है

यह सत्य प्रमाणित हो गया

ग्रौर

ग्रब ग्राप

इसका प्रचार कीजिए !

सार्वदेशिक सभा द्वारा प्रकाशित

ग्राचार्य वैद्यनाथ शास्त्री

लिखित महान् ग्रन्थ

Sciences in The Vedas

आधुनिक युग का ग्रनुपम प्रकाशन

ग्रत्यन्त सुन्दर, ग्राकर्षक, छपाई काग़ज़ जिल्द ग्रौर वह सब कुछ जो आप चाहते हैं—मूल्य १२)

प्राप्ति स्थान—

सार्वदेशिक ग्रार्य प्रतिनिधि सभा (ज)

रामलीला मैदान नई दिल्ली-१

बड़ौदा (गुजरात) स्थित

आर्य कन्या महाविद्यालय

जो लोग हमारे देश और समाज की निन्दा करने को उधार खाये बैठे हैं, वे चाहे कुछ कहें, लेकिन वास्तविकता यह है कि प्राचीनकाल से हमारे यहां स्त्रियों को अत्यन्त सम्मान की दृष्टि से देखा जाता रहा है।

हमारी इन परम्पराओं के शानदार इतिहास से प्रेरणा लेकर प्रसिद्ध आर्यसमाजी नेता मास्टर आत्माराम जी अमृतसरी के सुपुत्र श्री आनन्दप्रिय पण्डित ने सन् १९२५ में बड़ौदा के समीप इटोला में आर्यकन्या महाविद्यालय के नाम से एक गुरुकुल की स्थापना की। आनन्दप्रिय जी एलएल० बी० हैं, लेकिन उन्होंने वकालत का पेशा न अपनाकर यह कन्या गुरुकुल खोला।

कुछ ही दिनों में आनन्दप्रियजी ने अनुभव किया कि यह स्थान इतना छोटा है कि इसमें आधुनिक ढंग का विद्यालय नहीं चलाया जा सकता। वह इस स्थान की सीमित उपयोगिता से असन्तुष्ट थे। उन दिनों बड़ौदा के महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ के शासन में बड़ौदा नगर उन्नति की मंजिलें तय करता जा रहा था। फलस्वरूप आनन्दप्रिय जी ने इसी नगर में अपना गुरुकुल ले आने का फैसला किया।

वहां पहले तो उन्होंने एक मिल के अहाते में अपना गुरुकुल चलाया, बाद में दानवीर राजाबहादुर नारायणलाल बंसीलाल को प्रेरणा दी कि वह इस विद्यालय के लिए कोई बड़ी जगह खरीद दें। शुरू-शुरू में यह विद्यालय नौ बीघा भूमि में प्रारम्भ किया गया। बढ़ते-बढ़ते पच्चीस बीघा भूमि में अनेक हाल कमरे और छात्रावास बन गये। विद्यालय ने महाविद्यालय का रूप धारण कर लिया।

आनन्दप्रिय जी का लक्ष्य यह रहा कि इस महाविद्यालय से पढ़कर निकली स्नातिकाएं सही अर्थों में वीरांगनाएं हों। उनके सारे प्रयत्न इसी

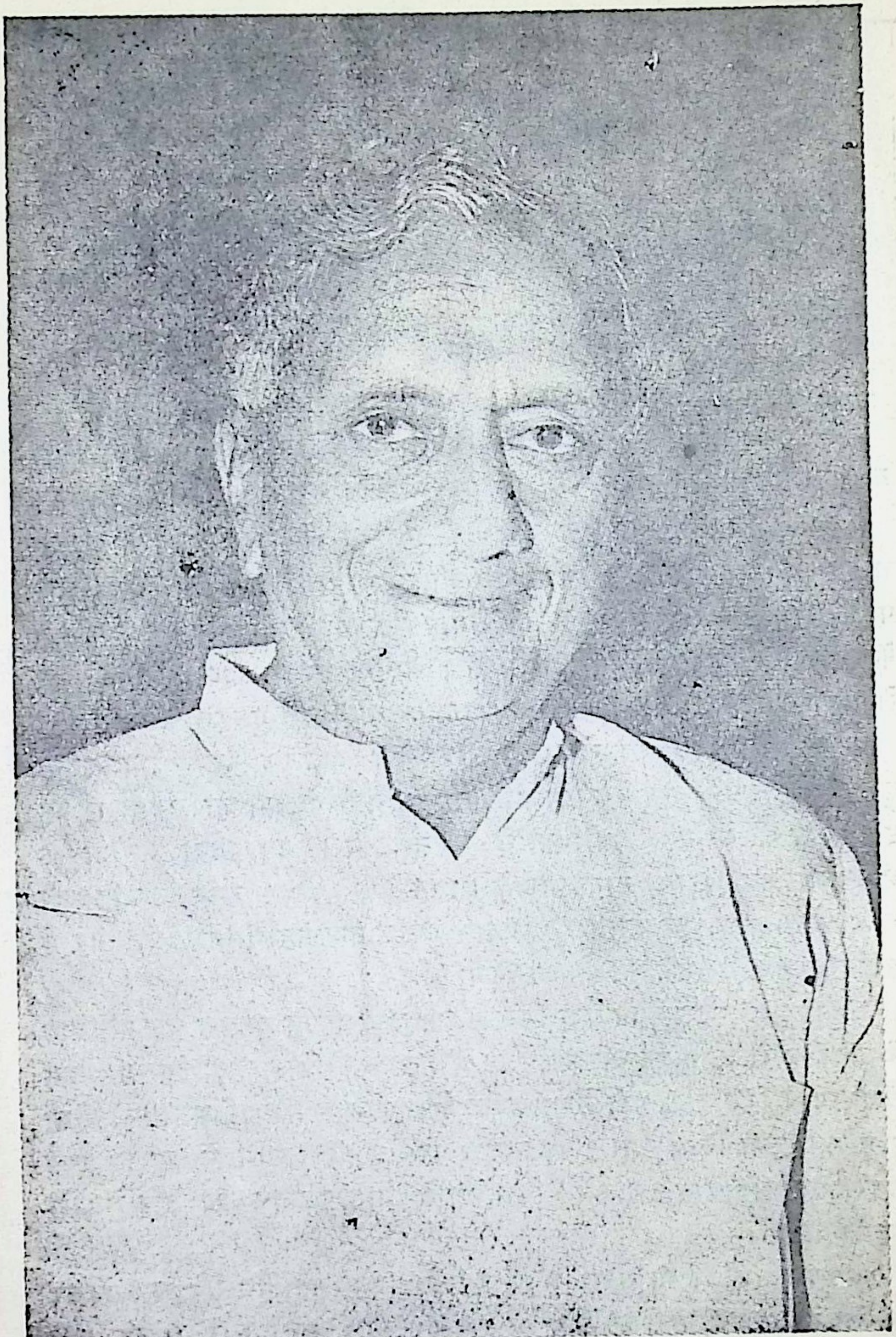

संस्था के संचालक व प्राण

कर्मठ आर्य नेता श्री पं० आनन्दप्रिय जी

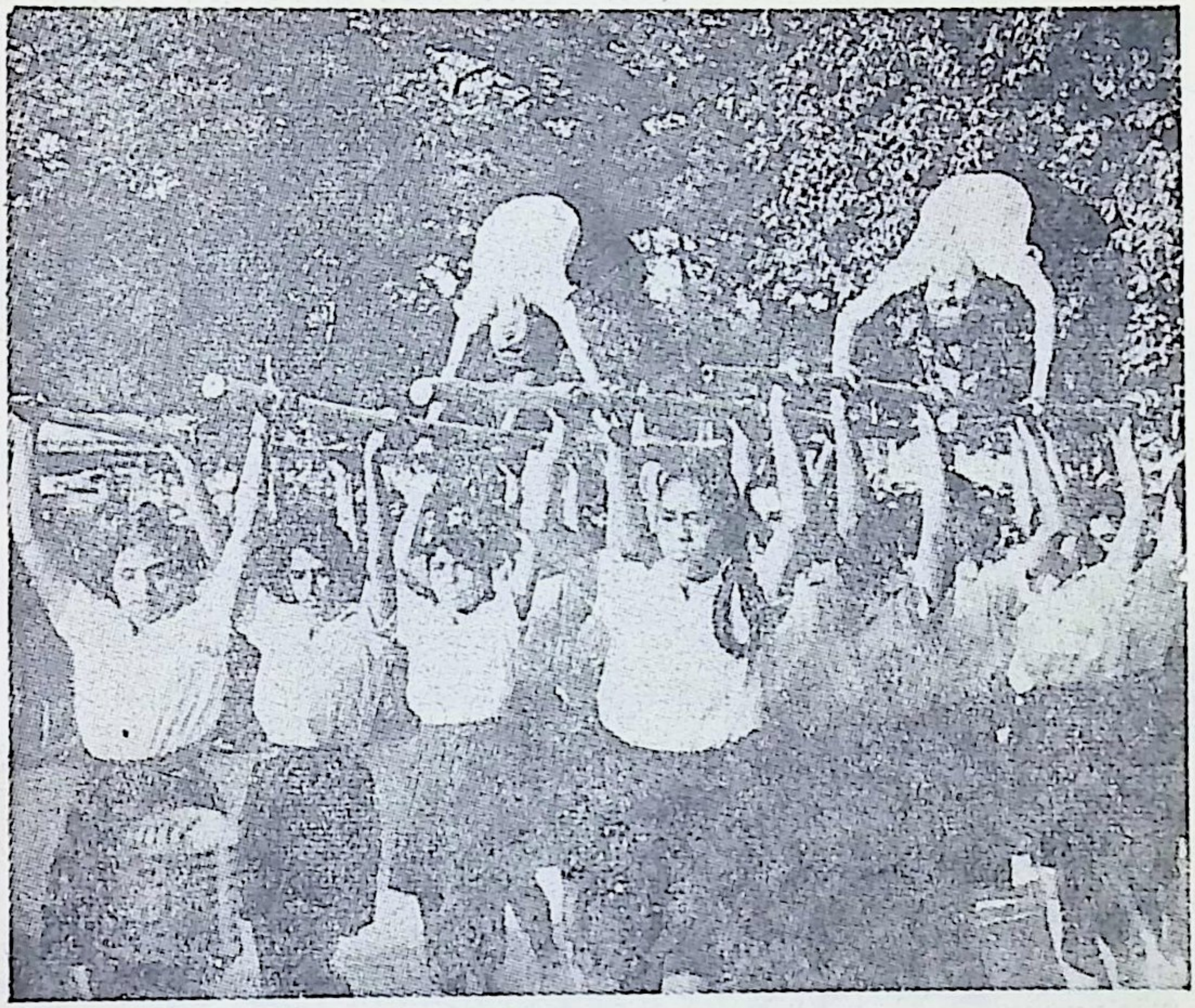

आर्य कन्या महाविद्यालय बड़ौदा की ब्रह्मचारिणियां व्यायाम करती हुयी चित्र में दिखायी दे रही हैं। संस्था भावी माताओं में वीरता के भाव भरने का निरंतर यत्न करती रहती है—

संपादक

जब अचानक अतिथि पधारें

तो आपको परेशान होने तथा घबराने की
जरूरत नहीं। तत्काल चन्दू की स्वादिष्ट
मिठाइयाँ मंगाइये और बड़ी उदारता
से अल्पाहार तथा खाने पर उनके
सामने पेश कीजिये। अपने
अतिथि को प्रसन्न करने का
यह सबसे मधुर और
सहज उपाय है।

विदाई भेंटों के लिए चमकते-दमकते डिब्बों में

चन्दू की मिठाइयां

शुद्ध घी की मिठाइयां

पंजाबी चन्दू हलवाई

करांची वाला

185, Walkeshwar Road, Teen Batti, Bombay-6. *Phone* : 363625

BRANCHES :		*Phone* :
(1) Jhaveri	...	313729
(2) Grant Road	...	351780
(3) Colaba	...	213813
(4) Dadar	...	442012
(5) Worli	...	372796
(6) Sion	...	473889
(7) Thakurdwar	...	355683
(8) Fort	...	2539212

Factory : Chandu Bhawan, Grant Road *Phone No.* 372628

तुरत उपचार

—रावी

किसी समय एक देश में वर्षा की कमी और व्यापारिक ह्रास के कारणों से बड़ी दरिद्रता आ गई और देशवासियों के भूखों मरने की नौबत आ पहुँची।

देश के राजा ने राज्य भर में घोषणा कर दी कि जो व्यक्ति इस परिस्थिति से मुक्ति दिलाने के लिए सब से अच्छी योजना प्रस्तुत करेगा उसे राज्य का प्रधान मन्त्री बनाकर उसकी योजना को कार्यान्वित करने का पूरा अवसर दिया जायेगा।

अनेक विद्वानों और अर्थ-कृषिविशारदों ने अपनी-अपनी योजनाएँ प्रस्तुत कीं। योजनाएँ स्वभावतः लम्बी-चौड़ी और कम या अधिक विलम्ब साध्य थीं और उनके कार्यान्वित करने में बहुत धैर्य की आवश्यकता थी। किन्तु उनमें एक योजना ऐसी भी थी जिसमें पहले दिन से ही प्रस्तुत विकट समस्या के हल का आश्वासन था। विशेषता यह थी कि उस योजना में आश्वासन के अतिरिक्त और कोई बात नहीं थी।

राजा ने इसी योजना को स्वीकार कर लिया और उसके प्रस्तुत-कर्ता को प्रधान-मंत्री बनाकर उसके अधिकार सौंप दिये।

इस नये मंत्री ने राजकीय अन्न के सुरक्षित गोदामों में से निकलवा कर अन्न के बोरे रातों-रात राज्य के प्रत्येक नगर और ग्राम में पहुँचवा दिये और आदेश दिया कि प्रतिदिन प्रत्येक नगर और ग्राम में केवल प्रातः से मध्याह्न-काल तक ही खेतों और कारखानों में काम होगा, दोपहर में राजकीय भोजन-शाला से सब को यथेष्ट भोजन मिलेगा और सायं से शयन काल तक के लिए विशेष मेलों और विविध प्रकार के सामूहिक आमोद-प्रमोदों का आयोजन रहेगा।

इस प्रकार सारे राज्य में मेलों और नगर-भोजों का दौर चल पड़ा। जनता अपने प्रस्तुत अभाव के संकट को भूल गई और उसे विश्वास होने लगा कि किसी दैवी समृद्धि ने आकर उसकी दरिद्रता को दूर किया है।

किन्तु सात दिन के भीतर ही राजकीय अन्न-भंड़ार तीन चौथाई से अधिक खाली हो गया। राजा को इसकी सूचना मिली। उसने तुरन्त इस मंत्री को अपदस्थ करके कारावास में डाल दिया और अगले दिन फांसी के तख्ते पर लटका दिया। इतनी बड़ी राष्ट्रघाती मूर्खता या उच्छृंखलता का इससे कम और क्या दण्ड दिया जा सकता था? यह दण्ड जनता की दृष्टि में नहीं आने दिया गया।

किन्तु राजकीय भोजनशालाएँ अब बन्द नहीं की जा सकती थीं। उन्हें बन्द करने का अर्थ था। देश में भयंकर अराजकता और लूटमार। राजा ने देश के धनिकों और अन्न-व्यवसायियों के पास रातों-रात अपने गुप्तचर भेजकर इस भयंकर परिस्थिति की चेतावनी दी और कहा कि यदि वे अपना सम्पूर्ण अन्न तुरंत ही राजकीय गोदामों में न भेज देंगे तो दो-तीन दिन के भीतर ही जनता उनके अन्न-भंडारों के साथ-साथ उनकी सम्पूर्ण सम्पत्ति और और प्राणों तक को लूट लेगी।

परिस्थिति की उग्रता स्पष्ट थी। अधिकांश अन्न-संग्राहकों ने अपने संग्रह का अधिकांश राज-भंडार में दे दिया। राजकीय भोजन-शालाएँ यथापूर्व चलती रहीं और उनके साथ-साथ मेलों और उत्सवों के दौर भी। जब राज-भंडार में दस दिन के लिए अन्न शेष रह गया, तब नई फसल कट कर आने में केवल बीस दिन की देर रह गई थी।

यथोचित विज्ञप्तियों द्वारा राजा ने यह स्थिति समस्त जनता के सम्मुख प्रकट कर दी। अब की बार फसल बहुत अच्छी हुई थी। लोगों ने परिश्रम उत्साह और निश्चितता से काम किया था। बीस दिन तक आधा भोजन लेकर ही भूख का आतंक उनके हृदयों से निकल गया था। काम चलाने की राज-व्यवस्था को जनता ने सहर्ष स्वीकार किया। कुछ अन्य धनिकों ने अपना छिपाया हुआ अन्न भी राजभंडार में भेज दिया। भोजन की कमी और घट गई।

नये अन्न दिवस का उत्सव राज्य में विशेष समारोह से मनाया गया। उसी दिन राज दरबार में मृत्युदण्ड प्राप्त प्रधान मंत्री के एक पुराने भृत्य ने एक परचा राजा के सम्मुख प्रस्तुत किया। उसमें प्रधान मंत्री ने जो कृषि और अर्थ के साथ-साथ मनोविज्ञान का भी एक प्रकांड किन्तु अविज्ञापित अन्वेषक था, अन्न-व्यवस्था-संबंधी गणना इस प्रकार अंकित की थी :

१२ कोटि लोगों के लिए आगामी अन्न दिवस तक के लिए आवश्यक
१२० सहस्र तुला।

आतंक जनित अतिरिक्त क्षुधा के लिए आवश्यक
३० सहस्र तुला

१५० सहस्र तुला।

राज-भंडार में संग्रहीत—६ सहस्र तुला	
अन्न-धनिकों के भंडार में छिपा	—६० स० तु०
आतंक जनित अतिरिक्त क्षुधा के अभाव से बचत	—३० स० तु०
उल्लास-स्फूर्ति के द्वारा आहार में बचत	—१५ स० तु०
त्याग और निवेदित उपवास द्वारा व्यवस्थित	— ६ स० तु०
	१५० स० तु०

मेरे कथा गुरु की टिप्पणी है कि उस प्रधान मंत्री को राज-न्याय द्वारा जो पुरस्कार मिला उस पर उन्हें और उस दिवंगत मंत्री को तनिक भी आपत्ति नहीं है, क्योंकि वह आज की आर्थिक बुद्धिमत्ता और न्याय-नीति के बहुत कुछ अनुकूल ही था। फिर भी उनका मत है कि आज की अभावपूर्ण स्थिति का वही उपचार कारगर हो सकता है जो विलम्ब साध्य न होकर तात्कालिक हो और वैसा उपचार कोई ऐसा ही अर्थ-कृषि-विशारद प्रस्तुत कर सकता है जो उन विद्याओं से ऊपर सच्चे मानव-मनोविज्ञान का ज्ञाता हो और उस प्रधान मंत्री का पुरस्कार भी एक बार अपने सिर पर लेने के लिए तैयार हो।

आवश्यकता है एक योग्य आचार्य व प्रबंधक की

दयानन्द उपदेशक महाविद्यालय वैदिक साधन आश्रम यमुनानगर के लिए एक ऐसे आर्य विद्वान् की आवश्यकता है जो वैदिक सिद्धान्तों के अध्यापन के अतिरिक्त प्रबन्ध कार्य में भी निपुण हो। न्यूनतम स्वीकार्य वेतन उल्लेख के साथ आवेदन करें।

सत्यानन्द सरस्वती

उपकुलपति

दयानन्द उपदेशक महाविद्यालय

वैदिक साधन आश्रम यमुनानगर (अम्बाला)

खनिज और खाद्योज की खान खजूर

खजूर बहुत उत्तम प्राकृतिक भोजन है। आटा, दाल, चावल आदि के समान ही यह भी अपने में पूर्ण भोजन है। किसी ने इसको 'सूर्य का संग्रहीत प्रकाश' भी कहा है। वृक्षों पर पकने के लिए इस को सूर्य की कड़ी गर्मी की आवश्यकता होती है। अरब देश की कहावत है "खजूर के पेड़ का सिर आग और पैर पानी में होना चाहिए।" भारत में भी खजूर का वृक्ष प्राय: रेतीली जमीन या रेगिस्तान में होता है और उसकी जड़ें जमीन में गहरी चली जाती हैं और वहां से पोषण तत्त्व प्राप्त करती हैं।

खजूर बड़ों और बच्चों दोनों के लिए बहुत लाभदायक खाद्य है, क्योंकि इसमें बड़े अनुपात में प्राकृतिक शक्कर होती है, जिसे पचाने के लिए प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं और जो शीघ्र ही पचने के अतिरिक्त चर्बी भी नहीं बढ़ाती। इस तरह यह मिल की चीनी और उसकी बनी मिठाइयों के दोषों से मुक्त होती है।

इसके अतिरिक्त खजूर में प्रोटीन आदि ऐसे तत्त्व भी होते हैं, जो शरीर के विकास के लिए बहुत लाभदायक हैं। खजूर में लोहा, चूना आदि खनिज तत्व भी होते हैं, जो खून बढ़ाते हैं, और हड्डियों और दांतों को पुष्ट करते हैं। इसके अतिरिक्त उसमें मैग्नीशियम, सोडियम, पोटाशियम, फास्फोरस आदि खनिज तत्व होते हैं। खजूर में काफी परिमाण में विटामिन 'ए', 'बी$_1$' 'बी$_2$' और' बी कम्प्लेक्स' होते हैं, लेकिन विटामिन 'सी' और 'डी'

कम परिमाण में पाये जाते हैं।

ये सब चीजें शरीर को हृष्ट-पुष्ट बनाने के लिए बहुत आवश्यक हैं। यदि खजूर और मांस की तुलना की जाय तो खजूर में खाद्य लौह मांस से एक तिहाई अधिक और अच्छी किस्म का होगा।

खजूर को दूध के साथ खाया जाय तो पूरा भोजन बन जाता है। एक पौंड खजूर और सेर भर दूध एक व्यक्ति के लिए एक दिन का न केवल पर्याप्त बल्कि उच्च कोटि का भोजन है।

खाद्य महत्त्व के अतिरिक्त खजूर की एक खूबी यह भी है कि यदि इसे नियमित रूप से खायी जाय तो यह कब्ज भी दूर करता है। खजूर, बकरी का दूध और फल गान्धीजी का प्रधान आहार था और इसके कारण उनका स्वास्थ्य बहुत उत्तम रहा।

नियमित भोजन के रूप में अपनाने से पहले यह देख लेना आवश्यक है कि वह अच्छी और साफ सुथरी हो। बाज़ार में जो खजूर बिकती है, उस पर प्रायः धूल और कूड़ा चढ़ा रहता है, इसलिये उसे पहले अच्छी तरह धो लेना चाहिए। आम तौर पर बाजार में जो खजूर खुली बिकती है उस पर मक्खियाँ और मच्छर बैठकर रोगाणु छोड़ देते है, इसलिए उनसे भी सावधान रहना चाहिए।

हो सकता है, एक साथ ज्यादा खजूर खाने से उसे पचाने में कठिनाई हो इसलिए सर्वोत्तम तरीका यह है कि भोजन के साथ थोड़ी मात्रा में खजूर चबाकर खाई जाय।

नवयुवकों के लिये मेरा सन्देश तीन शब्दों में है—परिश्रम, परिश्रम, परिश्रम !

—बिस्मार्क

याद रखिये, आपकी देह में एक भी नस ऐसी नहीं है, जो काम करने से बलवान् न होती हो। साथ ही हमारे शरीर, मन या आत्मा की ऐसी कोई शक्ति नहीं जो परिश्रम से सुधरती न हो !

—हॉल

जो काम करते-करते कभी थकता नहीं, देवता उसके कभी अमित्र नहीं बनते !

—वेद

मुगल राज्य का
एक असाम्प्रदायिक फरमान

★ ★

मुग़ल राज्य का गोरक्षा संबंधी यह असांप्रदायिक फ़रमान जहाँ मुगलिया शासन की बुलंद हिम्मत और साफ़ नीयत का प्रमाण है वहां वह हमारे वर्तमान असांप्रदायिक शासन का भी नेत्रोन्मीलन करने वाला है। नीचे हम मुहम्मद अकबर शाह शाह आलम द्वारा लिखित उस फ़रमान का उर्दू अनुवाद दे रहे हैं।

प्रश्न बाबर बादशाह का

शरियत १ इस्लाम के मुफ्तियों की ख़िदमत में गाय व शीरदार (दूध देने वाली) गाय की बाबत क्या हुक्म है ?

जवाब मौलवी साहब का

चुनाँचे मौलवी कुतुबुद्दीन साहब पीर शाहनशाह हिंदुस्तान और मौलवी साबिर बख्श साहब ने बतलाया कि हदीस शरीफ में इन चारों चीजों की मुमानिअत है, इसलिए दीनदार मुसलमानों और शरियत के पाबंद लोगों पर हदीस शरीफ के मुवाफिक अमल दरामद लाज़िम है। हदीस के अल्फ़ाज़ ये हैं

अव्वल कातअ उल् नज़र (यानी सब्ज दरख्त बेरी, पीपल वगैरह को काटने वाला)

दूसरा बअ उल्बशर (यानी इंसान को बेचने वाला)

तीसरा शारिब उल् खमर (यानी शराब पीने वाला, जानी वगैरह)

चहारम ज़ाबह उल् बकर (यानी गाय को जिबह करने वाला)।

ये सब लोग बिला शक व शुबह खुदावन्द आलम व आलमियान के नजदीक काबिल मुवाखिजा २ हैं।

यह उस फरमान ३ की नकल है जो आलीशान मुहम्मद अकबरशाह शाह आलम ने लिखी है, और दरबारी निशानात से मुरत्ति व हुआ। ताकि सल्तनत ४ के मुन्तज़िमान ५ और खिलाफत और आलीकदर अमीर और परगनात के हुक्काम और शाही मुमालिक के कारबार के जिम्मेदार जान लें कि इस

अदल [६] के जमाने में और दादगीरी के दौर में वह मुबारक फरमान जिसकी अताअत [७] लाजिम है सादिर किया गया है ताकि सबको मालूम रहे कि सब हैवानात खुदा की कुदरत से मखलूक हैं और फायदे से खाली नहीं हैं। [८] इन सबसे गाय की जिन्स ख्वाह मादा हो या नर बेशुमार फायदों की मसदर है; क्योंकि इन्सान व हैवान की जिंदगी अनाज व रूईदगी पर मुनहसर है, और बगैर इन हर दो के जराअत का काम दुश्वार है और काश्त किलाबारानी [९] पर मौक़ूफ़ हैं और किलाबारानी के लिए नर गाय की इम्दाद एक लाज़मी अमर है। लिहाजा आबादी आलम का दारोमदार व इनहसार गाय की जिस पर ठहरा और इनसान व हैवान की ज़ीस्त [१०] का इनहसार भी इसी पर रहा, इसलिए हमारी बुलंद हिम्मत और साफ़ नीअत का यह तक़ाजा है कि मावदौलत [११] की तमाम कलमरू [१२] में गावकुशी का निशान बिलकुल न रहे। इस शाही फ़रमान को देखते ही अराकीन सल्तनत इस [१३] में खास कोशिश अमल में लावें ताकि आइन्दा सुलतानी फ़रमान की रू से किसी शहर, कस्बे और गाँव में गाव कुशी की रस्म बिलकुल न रहे। अगर आइंदा कोई शख्स इस हुक्म की खिलाफ़ [१४] वरज़ी का मुरतकिब [१५] होकर इस ममनूअ फ़ेल [१६] से बाज़ न आयेगा तो समझ ले कि उसको सुलतानी ग़ज़ब में जो रब्बानी कहर [१७] का एक नमूना है मुबतला होना पड़ेगा और सज़ावार सजा होगा।

१ मुसलमानी क़ानून; २ उत्तरदायी; ३ राज-आज्ञा; ४ राज्य; ५ इंतज़ाम करने वाले; ६ न्याय; ७ मान्यता; ८ स्रोत; ९ जुताई; १० जीवन; ११ हमारी; १२ राज्य; १३ विषय; १४ प्रतिकूल १५ चल कर; १६ काम; १७ ईश्वरीय; १८ कोष।

गृहिणी-सूक्त

भाग्य से यदि किसी की पत्नी साफ-सुथरी, कार्य कुशल, नित्य पति की इच्छानुगामिनी तथा सदा मधुर भाषिणी निकल आये तो उसे समझना चाहिए कि उसके घर में मानुषी नहीं सचमुच देवी का पदार्पण हुआ है। —चाणक्य

पति को कर्त्तव्य निश्चय करने में सच्ची सलाह देने वाली, घर के काम-काज में दासी की तरह सदा जुटी रहने वाली, माता के सामान स्नेहपूर्वक अनुरोध करके भोजन कराने में दक्ष, सोते समय अप्सरा रम्भा के समान मनोरंजन-कुशल, धर्मकार्यों में सदा सहयोग देने वाली और क्षमा करने में पृथ्वी से भी क्षमाशील, ऐसी छह गुणों वाली पत्नी बड़े भाग्यवान् को ही मिला करती है।

धर्मवीर श्री पं० लेखराम

संसार भावमय है। संसार केवल भाव का प्रसार है। भाव ही संसार में शासन करते हैं। मानव-मन में प्रथम भाव का ही आविर्भाव होता है; उसके अनुसार ही वह क्रिया में प्रवृत्त होता है। साधारण मनुष्यों के मानसरोवरों में भावों के आविर्भाव-तिरोभाव की तरंगें सदा उठती रहती हैं। उनके बहुत से भाव दरिद्रों के मनोरथों के समान उत्पन्न होते ही विलीन हो जाते हैं, किन्तु महाशयों के भाव कार्य परिणत हुए बिना नहीं रहते। महापुरुषों के भाव तो ससार में हलचल मचा देते हैं, जगत् की बड़ी-बड़ी क्रान्तियों के कारण महापुरुषों के भाव ही हुए हैं। संसार के सारे मतमतान्तर महापुरुषों के विविध भावों का ही प्रपञ्च हैं। जब किसी महापुरुष के हृदय पर किसी भाव का बलपूर्वक आघात होता है, तभी वह संसार में प्रचार पाता है और किसी विशेष मत का रूप धारण करता है। नाना मतों की संस्थापना की यही प्रक्रिया और इतिहास भी यही है। किन्तु भावों के आघात-प्रतिघात का प्रभाव भावुक हृदयों पर ही चिरस्थायी होता है। इसलिए संसार में जितने परिवर्तन, विप्लव तथा क्रान्तियां हुई हैं वे सब भावुक महापुरुषों द्वारा ही हुई हैं। जनसाधारण ऐसे भावुक महापुरुषों को उन्मत्त व पागल कहकर हँसता है और वे वस्तुतः अपनी धुन में उन्मत्त वा मस्त रहते हैं। संसार के इतिहास को बनाने वाले विविध धर्मों के संस्थापक अपने विचारों के पीछे पागल बने हुए अपनी धुन के पक्के ऐसे ही उन्मत्त महानुभाव थे। यदि धर्म संस्थापकों की जीवनियों का मनन किया जाय तो यह विशेषता उन सब में सामान्य रूप से उपलब्ध होगी। बुद्ध, ईसा, मुहम्मद, कबीर, दयानन्द, गांधी सभी अपने विचारों के प्रचार में उन्मत्त प्रतीत होंगे। उनके सिद्धान्तों का प्रसार भी संसार में उनके भावुक अनुयायियों द्वारा हुआ है। बुद्ध के आनन्द आदि प्रमुख भिक्षु, ईसा के पितरस आदि हवारी, मुहम्मद के अत्युत्साही (जोशीले) अली और उमर

धर्म्मवीर पं० लेखरामजी आर्य्यमुसाफिर ।

आदि खलीफ़े इसके उत्तम उदाहरण हैं। इसी भांति पण्डित लेखराम भी महर्षि दयानन्द के अत्यन्त भावुक अनुयायी थे।

आर्यसमाज में तो कोई भी ऐसा व्यक्ति न होगा जो धर्मवीर पण्डित लेखराम आर्यपथिक के नाम और काम को न जानता हो, किन्तु आर्यसमाज से बाहर भी करोड़ों लोग पं० लेखराम के नाम से परिचित हैं। पंडित लेखराम की भावुकता ही सर्वसाधारण में उनके इस परिचय का मूल कारण बनी थी।

वह पंजाब के जेहलम जिले के एक अप्रसिद्ध ग्राम सैदपुर में एक अप्रसिद्ध सारस्वत ब्राह्मण कुल में जन्मे थे परन्तु उनमें अपने पितृकुल की सैनिकवृत्ति से आया हुआ शरीर का गठन तथा क्षात्र तेज का कुछ अंश भी अवश्य विद्यमान था। उनके पितामह महता नारायणसिंह पंजाव के सिखकालीन विप्लव के वीर योद्धा थे और कई संग्रामों में अपना हाथ दिखा चुके थे। उन्हीं महता नारायणसिंह के पुत्र महता तारासिंह हुए जिनके पुत्र पं लेखराम का जन्म ८ चैत्र संवत् १९१५ विक्रमी को शुक्र के दिन उक्त सैदपुर ग्राम में हुआ था।

वे बाल्यकाल से ही भावुक तथा धार्मिक थे। अपने चाचा पं० गण्डाराम जी को एकादशी का व्रत करते हुए देखकर बालक लेखराम ने ११ वर्ष की अवस्था में बड़ी श्रद्धा से एकादशी का व्रत रखना विधिपूर्वक आरम्भ कर दिया था। उनको बाल्यकाल में केवल उर्दू-फारसी की शिक्षा मिली थी क्योंकि उस समय पंजाब और संयुक्त प्रान्त में उसी के पढ़ाने की परिपाटी प्रचलित थी। यह शिक्षा आगे चलकर उनके मोहम्मदी मत की आलोचना करने में बहुत सहायक हुई। उनके विद्यार्थी जीवन में केवल यही बात उल्लेख योग्य है कि वे तब भी स्वतन्त्रताप्रिय, प्रत्युत्पन्नमति, तथा तात्कालिक उत्तर-प्रत्युत्तर प्रवीण थे और कविता की ओर भी उनका कुछ झुकाव था।

संवत् १९६२ के पौष मास में वे अपने चचा पं० गंगाराम इन्स्पेक्टर पुलिस की सहायता से पेशावर पुलिस में सारजेंट के पद पर नियुक्त हो गए। ऊपर बतलाया जा चुका है कि पं० लेखराम के बालहृदय में ही भावुकता तथा धार्मिकता का अंकुर विद्यमान था। एक धार्मिक सिक्ख सिपाही के सत्संग से उनकी प्रवृत्ति पूजा पाठ में प्रारम्भावस्था से ही हो चुकी थी। प्रातः काल स्नान-ध्यान में निमग्न रहते और गुरुमुखी में लिपिबद्ध भगवद्गीता का

पाठ किया करते थे। श्रीकृष्ण की भक्ति में तन्मय रहते थे। जीव, ब्रह्म की एकता के विश्वासी और वैराग्य प्रवण थे। २१ वर्ष की अवस्था में उनके माता-पिता ने उनको विवाह बन्धन में आबद्ध करना चाहा पर उन्होंने अपने वैराग्यवश उसको स्वीकार न किया। उनकी धर्म जिज्ञासा दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही गई। उन्हीं दिनों उनको लुधियाने के प्रसिद्ध स्वतन्त्र विचारक मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी के ग्रंथ पढ़ने का अवसर मिला। अलखधारी जी के ग्रंथों से उनको ऋषि दयानन्द के आर्य धर्म प्रचार और आर्य समाज की स्थापना का वृतान्त ज्ञात हुआ। और उन्होंने डाक द्वारा ऋषि दयानन्द प्रणीत ग्रंथों को मंगाकर पढ़ना प्रारम्भ किया। उससे उनके विचार सर्वथा बदल गए और वे आर्य समाजी बन गये।

वैदिक धर्मावलम्बी बन कर पं० लेखराम ने संवत् १९३७ के अन्तिम भाग में (सं० १९३६ वै० होना चाहिए) सीमा प्रान्त के यवनप्राय: पेशावर नगर में आर्य समाज की स्थापना की। उस समय पेशावर आर्य समाज के सर्वे सर्वा वे ही थे। वे और उनके चार-पांच साथियों से ही आर्यसमाज संगठित था। पं० लेखराम के मन में जीव ब्रह्म की एकता आदि के विषय में शंकायें उस समय तक बनी हुई थीं। उनकी निवृत्ति के लिए उन्होंने स्वयं आर्य समाज के संस्थापक ऋषि दयानन्द के दर्शन करने का निश्चय किया और साढ़े चार वर्ष की नौकरी के पश्चात् एक मास की छुट्टी लेकर १७ मई सन् १८८० ई० (सं० १९३६ वै०) को अजमेर पहुँच कर सेठ फतहमल जी की वाटिका में ठहरे हुए ऋषि दयानन्द के प्रथम और अन्तिम बार दर्शन किये। इस समागम का वृतान्त उन्होंने स्वयं इस प्रकार लिखा है—

स्वामी दयानन्द के दर्शन से यात्रा के सब कष्ट विस्मृत हो गए और उनके सत्योपदेश से सब संशय निवृत्त हो गए। उन्होंने महर्षि से उन से जयपुर में एक बंगाली की उपस्थित की हुई यह शंका पूछी कि जब आकाश और ब्रह्म दोनों सर्वव्यापक हैं तो दो व्यापक एक स्थान पर कैसे रह सकते हैं। महर्षि दयानन्द ने एक पत्थर उठाकर कहा कि जिस प्रकार इसमें अग्नि, मिट्टी और परमात्मा तीनों व्यापक हैं उसी प्रकार ब्रह्माण्ड में आकाश और ब्रह्म दोनों व्यापक हैं। सूक्ष्म वस्तु में भी उससे भी सूक्ष्मतर वस्तु व्यापक रहती है। ब्रह्म सूक्ष्मतम होने के कारण सर्वव्यापक है। पं० लेखराम जी लिखते हैं कि "इससे मेरी शान्ति हो गई।" उन्होंने महर्षि के अन्य संशय उपस्थित करने की आज्ञा

देने पर उनसे दस प्रश्न पूछे थे। उनमें से तीन उन्होंने उत्तर सहित स्वयं लिखे हैं। शेष उनको विस्मृत हो गये थे।

प्रथम प्रश्न—जीव, ब्रह्म की भिन्नता में कोई वेद का प्रमाण बतलाइये।

उत्तर—यजुर्वेद का सारा चालीसवां अध्याय जीव, ब्रह्म का भेद बतलाता है।

द्वितीय प्रश्न—अन्य मतों के मनुष्यों को शुद्ध करना चाहिए या नहीं ?

उत्तर—अवश्य शुद्ध करना चाहिए।

तृतीय प्रश्न—विद्युत क्या वस्तु है और कैसे उत्पन्न होती है ?

उत्तर—विद्युत सब स्थानों में है और रगड़ से उत्पन्न होती है। बादलों की विद्युत भी बादलों और वायु की रगड़ से उत्पन्न होती है।

"अन्त में मुझे आदेश दिया कि २५ वर्ष की आयु से पूर्व विवाह न करना।" ऋषि दयानन्द के स्वल्प सत्संग से पं० लेखराम के धार्मिक विचार दृढ़ हो गये और वैदिक धर्म पर उनका विश्वास चट्टान के समान अटल हो गया।

अजमेर से लौटकर उनको दिन रात धर्म प्रचार की ही धुन लगी रहती थी। उन्होंने पेशावर आर्य समाज की ओर से अपने सम्पादन में 'धर्मोपदेश" नामक उर्दू का मासिक पत्र जारी कराया। उसके साथ ही मौखिक व्याख्यान भी प्राय: देते रहते थे। कुछ दिनों पश्चात उनकी बदली पेशावर से अन्य पुलिस स्टेशनों को हो गई। उनकी धार्मिक लगन के कारण उनके विधर्मी अफसर उनसे मनोमालिन्य रखने लगे थे। उधर पं० लेखराम की स्वतन्त्र आत्मा विगर्हित श्ववृत्ति (सेवावृत्ति) से दिनों दिन खिन्न होती जाती थी। अन्त में उन्होंने २४ जुलाई सन् १८८४ (स० १९४१ वै०) की सदा स्मरणीय तिथि को, पुलिस की सेवा से त्याग पत्र दे दिया और उसमें यह भी लिख दिया कि दो महीने की कानूनी मियाद के पश्चात् मुझको रोकने का अधिकार किसी को भी न होगा। दो महीने पश्चात् ३० सितम्बर सन् १८८४ (सं० १९४१ वै०) को उन्होंने मनुष्यों के दासत्व से सदा के लिए मोक्ष लाभ किया। इस दासत्व श्रृंखला के कटते ही सारजेंट लेखराम, पं० लेखराम बन गये।

अहमदिया सम्प्रदाय और आर्यपथिक लेखरामजी

प्रारम्भ से ही इस्लाम की यह विशेषता रही है कि उसके अन्तरिक्ष में समय समय पर अन्धड़ उठते रहे हैं। कोई एक व्यक्ति ऐसा उत्पन्न हो जाता है जो मजहब के नाम पर कुछ लोगों को इकट्ठा करके कुछ समय के लिए समाज के वातावरण में हलचल पैदा कर देता है। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में रायबरेली के सैयद अहमद ब्रेलवी नाम के मौलवी ने सिक्खों के विरुद्ध जिहाद की घोषणा करके एक देशव्यापी उत्पात मचा दिया था। उसके धर्मान्धानुयायी वहाबी सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध हुए। प्रारम्भ में राजनैतिक स्वार्थ के कारण अंग्रेजी सरकार ने सिक्ख राज्य को हानि पहुँचाने के लिए उसे काफी बढ़ावा दिया परन्तु सिक्खों का नाश हो जाने पर जब वहाबी लोग अंग्रेजी सरकार पर ही टूट पड़े तब सरकार ने उनका दमन कर दिया।

जिस राजनीतिक स्वार्थ से प्रेरित होकर अंग्रेजी सरकार ने प्रारम्भ में वहाबियों को बढ़ावा दिया था उसकी प्रेरणा से अलीगढ़ के आन्दोलन का जन्म हुआ और अब हम जिस नए सम्प्रदाय की चर्चा करने लगे हैं उसके विकास की तह में भी अंग्रेजी सरकार की वही नीति विद्यमान थी। जो व्यक्ति या जो सम्प्रदाय भारत की एकता तथा बढ़ती हुई राष्ट्रीयता में विघ्न-कारी हो सकता था, सरकार उसकी पीठ पर हाथ रख देती थी, अन्य से चाहे वह कैसा ही बुरा हो। उस युग में पंजाब के गुरदासपुर जिले के कादियां गाँव में अहमदिया नाम के जिस सम्प्रदाय ने जन्म लिया वह इसी कोटि का था।

अहमदिया सम्प्रदाय का संस्थापक गुलाम अहमद कादियानी नया पैगम्बर बनकर मैदान में आया। उसने यह दावा किया कि "मुझे खुदा की ओर से इलहाम होता है।" और यह भी दावा किया कि "मैं मोजज़े (चमत्कार) कर सकता हूँ।" आश्चर्य यह है कि एक ईश्वर और एक नबी को मानने वाले इस्लाम में सैकड़ों ऐसे लोग निकल आये जिन्होंने गुलाम अहमद के इस दावे को ठीक मान लिया और वे उनके शिष्य बन गये। बहुत से मुसलमान मौलवियों की ओर से उसके दावे का विरोध किया गया परन्तु संम्प्रदाय का

दायरा बढ़ता गया यहां तक कि पंजाब के बहुत से नगरों में उसके केन्द्र स्थापित हो गए।

गुलाम अहमद बड़ा चतुर व्यक्ति था। पहले से ही उसने ऐसी नीति को अपनाया जिससे सरकार उससे प्रसन्न रही। वह सरकार बर्तानिया का बड़ा प्रशंसक और समर्थक बन गया। उसकी इस नीति का यह परिणाम हुआ कि प्रारम्भ से ही अंग्रेज अफसर उस पर रक्षा का हाथ रखने लगे और अहमदिया लोगों को अपने राज्य का दृढ़ स्तम्भ मानने लगे।

जिन दावों के बल पर अहमदिया सम्प्रदाय खड़ा हुआ था, आर्य समाज उनका कट्टर विरोधी था। इस कारण यह स्वाभाविक ही था कि दोनों की परस्पर टक्कर होती। पंजाब के जिस इलाके में कादियानी सम्प्रदाय का गढ़ था वह आर्य समाज का भी प्रचार क्षेत्र था। जब आर्य समाज की ओर से मिरजा गुलाम अहमद के दावों का खंडन होने लगा तब वह रुष्ट हो गया और अपने लेखों में न केवल आर्य समाजियों की निन्दा करने लगा अपितु मुबाहिसे की जगह "मुबाहिला" करने लगा। इस्लाम की भाषा में मुबाहिले का अर्थ है शाप देना।

यह परिस्थिति तब थी जब धार्मिक वाद-विवाद के क्षेत्र में इस वीर पुरुष ने प्रवेश किया।

यों तो पुलिस की नौकरी में रहते हुए ही पंडित जी ने अहमदियों के भ्रमजाल का खंडन आरम्भ कर दिया था, नौकरी से मुक्त होकर तो वे अपने पूरे आत्मिक बल को लेकर प्रचार युद्ध के मैदान में उतर आये। लाहौर आकर आपने गुलाम अहमद का एक विज्ञापन देखा जिसमें उसने अपने को खुदा का पैगम्बर घोषित किया था और साथ ही अन्य धर्म वालों को यह चुनौती दी थी कि वे उसके चमत्कारों को झूठा सिद्ध करके दिखायें। यदि कोई गैर मुस्लिम कादियां में एक वर्ष रहकर चमत्कार का कायल न हो तो मिर्जा ने उसे चौबीस सौ रुपये जुर्माने के तौर पर देने की भी घोषणा की थी। विज्ञापन पढ़ते ही पण्डित जी ने उसे पत्र लिखा जिसमें सूचना दी कि मैं तुम्हारे पास एक साल तक रहकर मोजजे का इम्तहान लेने को तैयार हूं। मिरजा तक पण्डित लेखराम जी की तर्क शक्ति और निर्भयता की ख्याति पहुँच चुकी थी। वह उन्हें टालने के पत्र लिखता रहा परन्तु पण्डित जी इस दम झांसे में आने वाले कहाँ थे। वे स्वयं कादियाँ पहुँच गए और मिरजा के घर

पर जाकर उसे ललकारा। जब इस पर भी वह चमत्कार दिखाने को तैयार न हुआ तो आपने कई दिन तक कादियां में वैदिक धर्म पर प्रभावशाली व्याख्यान दिये। उसका परिणाम यह हुआ कि एक जबरदस्त आर्यसमाज की स्थापना हो गई।

१८८६ ई० में पण्डित जी ने "नुसखा खत अहमदियान" नाम की एक और पुस्तक लिखी। यह पुस्तक गुलाम मोहम्मद की "सुरमा चश्म आर्य" के जवाब में लिखी गई थी। इस प्रकार वह लेखों और व्याख्यानों द्वारा अहमदिया सम्प्रदाय के मायाजाल को काटने के साथ-साथ इस्लाम के अन्य प्रचारकों के आर्यसमाज पर किये गये आक्षेपों के उत्तर भी देते रहते थे। अब धीरे-धीरे उनका प्रचार का क्षेत्र बढ़ रहा था। वे विधर्मियों के आक्रमणों के उत्तर भी देते थे और वैदिक सिद्धान्तों के मण्डन में पुस्तकें भी लिखते थे। १८८७ ई० के आरम्भ में फ़िरोजपुर से निकलने वाले साप्ताहिक 'आर्य गजट' के सम्पादक बने और अन्य कई पुस्तकें भी लिखीं। यह जानकर शायद आज के पाठकों को आश्चर्य होगा कि इस प्रकार दिन-रात धर्म की सेवा करने वाला उपदेशक उस समय आर्य प्रतिनिधि सभा से केवल २५ रुपये मासिक निर्वाह लेता था। यह था त्यागभाव जिसने उस युग में आर्यसमाज के प्रभाव को इतना विस्तृत और प्रबल कर दिया था।

१८८८ ई० में आर्य प्रतिनिधि सभा के अधिवेशन में निश्चय हुआ कि महर्षि के जीवन-वृतान्त के संग्रह का कार्य किसी योग्य व्यक्ति के सुपुर्द किया जाये सबकी दृष्टि पं० लेखराम जी पर पड़ी। उन्हें यह काम सौंपा गया कि वे देशभर में घूमकर महर्षि के जीवन से सम्बन्ध रखने वाली घटनाओं की छानबीन करें और जहाँ-जहाँ महर्षि गए हैं वहाँ पहुंचकर लोगों से मिलें और यदि कोई लिखित सामग्री मिले उसे भी इकट्ठा करें। पं० लेखराम जी ने यह काम सहर्ष स्वीकार कर लिया और कमर कसकर देशभर में भ्रमण करने के लिए तैयार हो गए। आपके नाम के साथ 'आर्य मुसाफिर' या 'आर्य पथिक' का विशेषण तब ही से जोड़ा गया।

दो वर्ष तक अनथक परिश्रम करके आर्य पथिक ने महर्षि के जीवन से सम्बन्ध रखने वाली जो जानकारी इकट्ठी की वह महर्षि के आज तक लिखे गए सभी जीवन-चरित्रों की आधारशिला है। अन्य लेखकों ने भाषा या क्रम

में परिवर्तन किया हो या सम्भव है कोई घटना भी नई जोड़ दी हो परन्तु जीवन चरित्र की रूपरेखा आज भी वही है जो आर्य पथिक ने बना दी थी। यह उनके उग्र परिश्रम और सत्यनिष्ठा का ज्वलन्त प्रमाण है।

आर्य-पथिक का बलिदान

पं० लेखराम जी जब महर्षि दयानन्द के जीवन वृत्तान्त की सामग्री एकत्र करने के लिए देश में घूम रहे थे तब जीवन वृत्तान्त की सामग्री एकत्र करना तो एक प्रत्यक्ष निमित्त था। पंडित जी की शक्तियाँ केवल उतने कार्य तक परिमित कैसे रह सकती थीं। उनके हृदय में प्रचार की अग्नि जल रही थी जहाँ जाते थे व्याख्यानों की झड़ी लगा देते थे। बीच-बीच में शास्त्रार्थ भी होते थे। साथ-साथ लिखने का कार्य भी चलता जाता था। आर्यपथिक जैसे अनथक वक्ता थे वैसे ही अनथक लेखक भी थे। अपनी थोड़ी-सी आयु में उन्होंने जितने व्याख्यान दिये और ग्रन्थ या लेख लिखे, उन्हें देखकर आश्चर्य होता है। ऐसा अनुभव होने लगता है कि शायद जीवन का एक क्षण भी उन्होंने अपना नहीं समझा था। सब कुछ महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज के अर्पण कर दिया था।

उनके लेख सम्बन्धी कार्यों को दो हिस्सों में बाँटा जा सकता है पहले हिस्से में हम उन लेखों को रख सकते हैं जिनमें सामान्य रूप से इस्लाम और विशेषत: अहमदिया सम्प्रदाय के आचार्य मिरजा गुलाम अहमद कादियानी की कड़ी आलोचना की गई थी। पंडित उर्दू, फारसी के विद्वान थे। उनका उर्दू लेखकों में बड़ा रौब था। संस्कृत का भी उन्होंने अच्छा अभ्यास कर लिया था। इस कारण पंडितजी के लेखों में युक्ति, प्रमाण और व्यंग्यों का बहुत सुन्दर मिश्रण रहता था। इस श्रेणी के ग्रन्थों में 'नुसखा खब्त अहमदिया' और 'तकजीब बुराहीन अहमदिया' यह दो विख्यात पुस्तकें थीं। ईसाई धर्म के सम्बन्ध में भी आपने कई लेख लिखे। दूसरी कोटि के ग्रन्थ और लेख अपने ढंग के अनूठे थे। वे थे अनुसन्धानात्मक। पहले ग्रन्थ का नाम था 'सृष्टि का इतिहास'। इसमें ऐतिहासिक और शास्त्रीय अनुसन्धान के आधार पर भारत के प्राचीन इतिहास की कई घटनाओं का विवरण दिया गया था। दूसरे ग्रन्थ में आवागमन के पक्ष में युक्तियों के अतिरिक्त विपक्षियों द्वारा किये गए आक्षेपों के उत्तर भी दिये गए

हैं। पुनर्जन्म के पक्ष में २७ युक्तियां दी गई हैं। इन दोनों ही ग्रन्थों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि लेखक ने अपने शास्त्रों के अतिरिक्त बीसियों अंग्रेजी के ग्रन्थों से भी लम्बे-लम्बे उद्धरण दिये हैं जो अधिक आश्चर्यजनक है क्योंकि पंडित जी अंग्रेजी बिल्कुल नहीं जानते थे। वह दूसरों से अंग्रेजी की पुस्तकें और अखबार सुना करते थे और उसमें से जिन उद्धरणों की आवश्यकता होती थी उसका अनुवाद करा लेते थे। कभी-कभी एक उद्धरण के अनुवाद तीन-तीन व्यक्तियों से कराते थे, और उनकी तुलना करके जिसे अधिक प्रामाणिक समझते थे, इसे पुस्तक में देते थे। उनके परिश्रम को देखकर आश्चर्य होता है। जो व्यक्ति रात-दिन भ्रमण करता रहे, जहाँ जाये वहाँ व्याख्यानों या शास्त्रार्थों में व्यस्त रहे वह अनुसन्धान से भरे ग्रन्थ लिख सके और वह भी आयु के केवल उनतालीस वर्षों में। इसे इच्छाशक्ति का चमत्कार ही समझना चाहिए।

खंडनात्मक लेखों में पंडित जी की भाषा बहुत जोरदार रहती थी। ओज उनका स्वाभाविक धर्म था। जब वह पेशावरी साफा, बन्द गले का कोट और पंजाबी ढंग का पाजामा पहनकर निकलते थे, तब देखने वालों को यह बिना कहे ही भान हो जाता था कि वह असाधारण व्यक्ति हैं। स्वस्थ शरीर, शेर जैसा गम्भीर स्वर और तेज से चमकती हुई आँखों को देखकर उनकी कार्य-शक्ति का अनुमान लग जाता था। प्रसिद्ध शिष्टाचार या तकल्लुफ जैसी वस्तु उनके पास भी नहीं फटक सकती थी। एक बार वह उत्तरप्रदेश में प्रचार के दौरे पर गए। वह खाना खा चुके और थाली से हाथ खींच लिया, तब भी शिष्टाचार के नियम के अनुसार परोसने वाले सज्जन ने खाना देने का आग्रह जारी रखा। यह बात पंडित जी को बहुत अखरी और उन्होंने परोसने वाले को डाँटते हुए कहा कि क्या मैं झूठ कहता हूं कि मुझे और भूख नहीं है।

एक दूसरे अवसर पर भोजन के बाद बिचारे गृहपति ने सभ्यता के विधि-विधान का पालन करते हुए पान पेश किया। आपने डाँट लगाई, "क्या मैं बकरी हूँ जो पत्ते खाऊँगा।" यज्ञ में बैठे हुए महाशय हाथ में चन्दन का रस लेकर आपके माथे पर लगाने लगे। आपने अपना हाथ आगे करते हुए कहा, "मेरे हाथ पर चन्दन लगा दो, माथे पर लगाओगे तो मुझे जुकाम हो जायेगा।"

लेखों और पुस्तकों के प्रकरण में पंडित जी की इन विशेषताओं की चर्चा

मैंने इसलिए की है कि उनके स्वभाव का यथार्थ रूप प्रकट हो जाये। उनके व्यवहार में एक विशेष खुरदरापन था जो वस्तुतः उनके अत्यन्त सरल परन्तु ओजस्वी हृदय का परिणाम था। उन पर कवि का यह वचन पूर्ण रूप में लागू होता था :—

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति ॥

असाधारण मनुष्यों के चित्त वज्र से भी कठोर परन्तु फूल से भी अधिक कोमल होते हैं। उनके रहस्य को कौन समझ सकता है। उनके भाषणों के समान लेखों में भी भावों की सरलता के साथ कहीं-कहीं भाषा की कठोरता मिश्रित दिखाई देती है।

पं० लेखरामजी कई मासिक पत्रों के सम्पादक रहे। जब वे पेशावर में पुलिस में नौकर थे तभी आपने 'धर्मोपदेश' नाम का मासिक पत्र निकाला था। वह कुछ दिन चलकर बन्द हो गया। जब नौकरी छोड़कर आप आर्यसमाज के प्रचारकार्य में लवलीन हो गए, तब आप 'आर्य गजट' के सम्पादक बने। आर्य गजट का मुख्य उद्देश्य वैदिक सिद्धान्तों का मंडन और विरोधियों के आक्षेपों का खंडन करना था। थोड़े ही दिनों में सम्पादक के युक्तियुक्त ओजस्वी लेखों ने आर्यों और आर्येतरों के मन पर 'आर्य गजट' की धाक बैठा दी। ऋषि दयानन्द की जीवनी के लिए सामग्री संग्रह करते हुए जब आप अजमेर पहुँचे तब आर्यसमाज की सफलता को सूचित करने के लिए 'आर्य विजय' नाम का सामयिक पत्र निकलवाया।

१८९३ में पंडित जी की आयु ३५ वर्ष की हो चुकी थी। उस वर्ष आप सभा से अवकाश लेकर घर गए और मरी पर्वत के एक गाँव की कुमारी लक्ष्मी देवी से विवाह किया। सामान्य मनुष्यों के लिए विवाह जीवन का एक नया पड़ाव समझा जाता है जिसके पश्चात् उसकी दिनचर्या बदल जाती है। परन्तु आर्य पथिक साधारण मनुष्य नहीं थे। जीवन में परिवर्तन करने वाला विवाह तो बहुत पहले धर्म प्रचार की उग्र भावना से हो चुका था। लक्ष्मी देवी जी से उनका विवाह तो वैदिक आश्रम व्यवस्था की पूर्ति के लिए ही हुआ। विवाह के पश्चात् भी उन्हें केवल प्रचार की ही धुन थी। शायद कोई सप्ताह ऐसा हो जब घर पर गृहस्थों की तरह रहे हों। प्रचार के क्षेत्र में

यत्र-तत्र-सर्वत्र गरजते हुए सुनाई देते थे। १८९५ में आपके पुत्र उत्पन्न हुआ। उनका नाम सुखदेव रखा गया। परन्तु वह अधिक समय तक इस आर्य युगल को सुख न दे सका। लगभग एक वर्ष तक जीवित रहकर २८ अगस्त १८९६ के दिन शिशु सुखदेव ने अपनी जीवन यात्रा समाप्त कर दी। अभी बच्चे की माता रो ही रही थीं कि एक समाज से बुलावा आ गया, आप बिस्तर बाँधकर चल दिये। लक्ष्मी देवी को आश्वासन देने का काम पंडित जी के मित्रों को करना पड़ा। लक्ष्मी देवी सचमुच देवी थीं। वे अपने पति की ऊँची भावनाओं से अनभिज्ञ नहीं थीं। उनके मुँह से कभी किसी ने यह शिकायत नहीं सुनी कि वे परिवार की ओर ध्यान नहीं देते। विवाह के बाद उस देवी ने अपने आपको आर्य पथिक का ही एक आवश्यक अवयव मान लिया था। गृहस्थ हो जाने पर भी आर्य पथिक की यात्राओं में कमी नहीं हुई। जहाँ भी धर्मचर्चा का डंका बजता था वहाँ मोर्चे पर पंडित जी दिखाई देते थे। यह उनके सम्पूर्ण सार्वजनिक जीवन की चर्या थी। मिरजा गुलाम अहमद ने कादियां से धमकी दी तो निर्भय सिपाही शत्रु के दुर्ग में जा धमका। हैदराबाद, सिन्ध और बूँदी जैसे एक दूसरे से दूरस्थ स्थानों से जब यह समाचार मिले कि कोई आर्य धर्मावलम्बी विधर्म में जा रहा है तो आप तुरन्त वहां पहुँच गए और रक्षा कर ली। जब पंजाब में आर्यसमाज के दोनों दलों में मांस-भक्षण पर झगड़ा चला तब पंडित जी अपनी प्रकृति के अनुसार पूरे जोर से मांस-भक्षण के विरुद्ध आन्दोलन करने लगे। लाहौर में हों या जोधपुर में, जहां से आप को यह बू भी आ जाती मांस-भक्षण पर विवाद चल रहा है, वहां आप दौड़ कर पहुँच जाते और वादविवाद की कमान अपने हाथ में ले लेते। १८९४ के पश्चात् आप यह भी सोचने लगे थे कि इस्लामी देशों में जाकर वैदिक धर्म का प्रचार करें।

इसी प्रकार की घटना जोधपुर में हुई। उसमें जहां आर्य पथिक की दृढ़ सिद्धान्त-भक्ति का प्रमाण मिला, वहां इसका भी एक दृष्टान्त प्रकट हो गया कि सच्चे और झूठे विश्वास में क्या भेद होता है। जोधपुर के राजा कर्नल प्रतापसिंह महर्षि दयानन्द के शिष्यों में से थे। उनकी वैदिक धर्म के सिद्धान्तों में श्रद्धा थी परन्तु एक विषय में अन्य आर्यपुरुषों से मतभेद था। वे मांस-भक्षण करते थे। इतना ही नहीं, वे यह भी कहते थे कि महर्षि दयानन्द क्षत्रियों द्वारा मांस-भक्षण को वेदविरुद्ध नहीं मानते थे। उनके पास दोनों पक्षों

के विद्वान जाते और अपनी सम्मति देते थे। धीरे-धीरे यह चर्चा फैल गई कि कर्नल प्रतापसिंह को प्रसन्न करने और उनसे भेंट लेने का एक ही उपाय है कि उनके सामने वेद तथा शास्त्रों के प्रमाणों से क्षत्रियों के मांस-भक्षण का समर्थन किया जाये। कुछ संन्यासी और पंडित जोधपुर जाकर जम गए। उनका यही काम था कि राजा साहब की हां में हां मिला कर पारितोषिक प्राप्त करें। इटावा के पं० भीमसेन शर्मा की गिनती ऋषि के शिष्यों में की जाती थी। वे महर्षि के 'वेद भाष्य' आदि ग्रन्थों के निर्माण में लेखक का कार्य करते थे। उस समय के पत्र व्यवहार के देखने से प्रतीत होता है कि महर्षि अपने इस शिष्य के व्यवहार से सन्तुष्ट नहीं थे। वे उसे पूरा विश्वासपात्र नहीं मानते थे। कर्नल प्रतापसिंह के सलाहकार साधुओं ने अपने पक्ष को पुष्ट करने के लिए पं० भीमसेन को जोधपुर निमन्त्रित किया। भीमसेन जी उससे पूर्व अपने मासिक पत्र 'आर्यसिद्धान्त' में मांस-भक्षण का खण्डन कर चुके थे। जोधपुर पहुंच कर मांस-भक्षण के पक्ष में सम्मति देने में थोड़ा बहुत संकोच किया परन्तु अन्त में इस रूप में सहमति प्रकट कर दी कि यदि क्षत्रिय हानिकारक पशुओं को मारकर उनका मांस खा ले तो कोई पाप नहीं। यह समाचार जब पं० लेखराम जी को मालूम हुआ तो वे तुरन्त जोधपुर जा पहुँचे और भीमसेन के कन्धे पर जोर से हाथ मारते हुए कहा, 'ईश्वर जानता है, यदि तूने महाराज के पास जाकर साफ-साफ यह न कह दिया कि मांस-भक्षण वेद-विरुद्ध है, तो तुझे आर्यसमाज में या किसी और धार्मिक सोसायटी में मुँह दिखलाने लायक न छोड़ूँगा।" भीम सेन जी पर पं० लेखराम जी की सिंहगर्जना का ऐसा प्रभाव हुआ कि मन का लोभ दब गया और भय प्रधान हो गया। दूसरे दिन महाराज के पास विदा के लिए जाने के समय शर्मा जी ने दृढ़ता से कह दिया कि मांस-भक्षण वैदिक धर्म के विरुद्ध है।

इन्हीं दिनों अमेरिका के शिकागो नगर की प्रदर्शिनी की तैयारियां हो रही थीं। आर्यसमाज की ओर से कोई विशेष प्रतिनिधि भेजने का विचार हो रहा था। लेखराम ने एक अपील छपवा कर मार्गव्यय और एक अंग्रेजी के सुयोग्य विद्वान् की सेवा मांगी। यद्यपि कोई तैयार न हुआ परन्तु इससे उनका धर्म के प्रति उत्कट प्रेम सिद्ध होता है। यदि वे अंग्रेजी जानते होते तो अवश्य अमेरिका जा पहुँचते।

६ अप्रैल १८९४ को सूर्यग्रहण के मेले पर कुरुक्षेत्र में आर्य समाज की ओर से प्रचार का प्रबन्ध किया गया। महात्मा मुन्शीराम के साथ पंडित लेखराम भी वहां गये। वहां पर उनका व्याख्यान बड़ा चित्ताकर्षक हुआ जिस का विषय था—धर्म की असलियत और उसका आन्दोलन। शंका समाधान भी यही करते थे। ७, ८, ९, अप्रैल को करनाल आर्यसमाज के उत्सव पर दो व्याख्यान दिये और शंका समाधान की। पंडित लेखराम के पांव में एक फोड़ा हो गया था जो चलने फिरने से खराब हो गया था। पंडित जी ने कुछ सभासदों से पूछा-किसी आर्य डाक्टर के पास मुझे ले चलो तो फोड़ा दिखाऊँ। एक अधिकारी ने किसी मुसलमान का नाम लिया तो इन्होंने पूछा—क्या कोई आर्य डाक्टर नहीं है? इस पर किसी आर्य सज्जन ने कहा— इलाज में आर्य अनार्य्यपना क्या घुसा है? यह सुनते ही आर्य पथिक की आंखें लाल हो गईं और बोले --'खाक आर्यसमाज़ है। एक डाक्टर को भी आर्य नहीं बना सकते।' इस पर महात्मा मुन्शीराम जी ने हंस कर कहा—क्या जिस समाज का डाक्टर सदस्य न हो तो क्या उसे आर्य समाज ही नहीं कहा जाए। लेखराम ने कुछ गम्भीर होकर कहा—"जिस आर्य समाज ने डाक्टरों, स्कूल के अध्यापकों और विद्यार्थियों को आर्य नहीं बनाया उसने क्या खाक काम किया? जड़ को सींचने से ही वृक्ष हरा होता है।"

पंडित जी सन्ध्या वन्दन में बड़े पक्के थे। एक बार इन्हीं महात्मा मुन्शीराम जी के साथ शिक्रम में लुधियाना से जगरांव जा रहे थे, मार्ग में पानी लेकर शौच गये। लौटने पर पता लगा कि हाथ-पैर धोने और कुल्ला करने के लिये पानी नहीं है। सन्ध्या का समय हो चुका था। पंडित जी सन्ध्या करने बैठ गये! जब सन्ध्या समाप्त कर चुके तब एक व्यक्ति ने दिल्लगी में पूछा—पंडित जी! क्या पेशावरी सन्ध्या कर चुके, ! पंडित जी ने गम्भीर स्वर में कहा—तुम पापी हो जो बिना पानी मिले ब्रह्मयज्ञ नहीं कर सकते। भोले भाई! स्नान कर्म्म है, हुआ वा न हुआ। परन्तु सन्ध्या धर्म है और उसका न करना पाप है। पंडित जी व्यायाम भी नित्य किया करते थे।

पंडित जी ज्वर से निर्बल हों, सफर से थके हुए हों, पुत्र मृत्यु शय्या पर लेटा हो परन्तु कहीं से समाचार आ जाये कि अमुक व्यक्ति को मुसलमान होने से बचाने के लिए आइये, वे तत्काल चल देते थे। उन्होंने जो अपनी दिनचर्या बनाई थी, उस में यह भी लिखा था—"कटु वचन तथा झूठ से अलग रहना

श्रौर "दीन-ए-इसलाम" की विषयुक्त शिक्षा के बुरे प्रभाव को दूर करने का प्रयत्न, श्रौर इसी प्रकार दूसरे मतों का भी, श्रौर वैदिक धर्म का प्रचार। ईश्वर ! मेरी इच्छा को श्राप पूर्ण कर दो।" यह पंक्तियां स्वयं लेखराम के धर्म सेवा की लगन को बोल कर कह रही हैं। शुद्धि की तो श्रनेक घटनाएँ हैं। एक यह है।

एक बार उन्हें कहीं से पता लगा कि पायल (पटियाला रियासत) में श्रमुक व्यक्ति श्रार्य धर्म को छोड़ रहा है। श्राप ट्रेन पर सवार हो चल दिये। जब गाड़ी लुधियाना से श्रागे चली, एक व्यक्ति ने इन से पूछा कि श्राप कहां जायेंगे ? उन्होंने कहा—चावा-पायल। उसने कहा वहां तो गाड़ी ठहरती नहीं। इन्होंने कहा—श्रच्छा देखो तो मुझे बड़ा जरूरी काम है। जब गाड़ी चावा-पायल स्टेशन पर पहुंची श्रौर न रुकी तब श्रापने बिस्तर बाहर फेंका श्रौर गाड़ी से कूद गये। कपड़े फटे श्रौर कुछ चोट भी श्राई। वहां से चल कर पायल पहुंचे श्रौर समाज के मत्री से कहा-श्रमुक व्यक्ति के पास चलो। दैवयोग से वह व्यक्ति मिल गया। पण्डित जी ने उससे कहा कि मैंने सुना है कि श्राप हिन्दू धर्म को छोड़ कर श्रन्य मत में जा रहे हैं। कृपया श्राप बताइये कि इस मत में क्या दोष है तथा उस मत में क्या विशेषता है जिससे श्राप इसे छोड़ कर उसे ग्रहण कर रहे हैं। उस व्यक्ति ने कहा-पहले श्राप यह बतायें की श्राप की यह दशा क्यों है ? कपड़े फटे हैं, शरीर में खोंच के निशान हैं। पण्डित जी ने कहा—श्राप के लिये श्राया था। गाड़ी स्टेशन पर नहीं रुकी, श्रतः कूद कर उतरा हूँ। उसने उत्तर दिया-पण्डित जी ! जिस मत में श्राप जैसे जान पर खेलने वाले पुरुष हैं, मैं उस धर्म को नहीं छोड़ सकता।

लेखराम जी को दुनिया की परवाह नहीं थी। श्रपनी श्रात्मा को देखते थे। एक बार कहीं से प्रचार करते हुये जालन्धर श्राये। वर्षा में कपड़े भीग चुके थे। धोने श्रौर सुखाने का समय नहीं था। दूसरे ही दिन जरूरी प्रोग्राम पर जाना था। उन्होंने महात्मा मुंशीराम जी से कपड़े लिये। साफ कमीज को श्रन्दर पहना श्रौर मैले को ऊपर पहन लिया। उन्होंने पूछा—पण्डित जी यह क्या किया। लेखराम जी ने उत्तर दिया—दुनिया की परवाह मुझे थोड़े ही है। वह तो यही कहेगी कि कपड़े मैले हैं। शरीर के साथ का कपड़ा स्वच्छ होना चाहिये, मैले कपड़े पहनने से तो मैं ही रुग्ण होऊंगा। बाहरी टीपटाप की उन्होंने कभी श्रावश्यकता श्रनुभव नहीं की। श्रान्तरिक स्वच्छता

का ध्यान अधिक था। कपड़े के बनाव चुनाव को जनानापन कहा करते थे।

उनमें मितव्यय और ईमानदारी थी। जहाँ कुली से असबाब उठा कर ले जाने में बचत होती वहाँ इक्का गाड़ी नहीं करते थे। जहाँ कहीं उतरने से इनका का काम भी होता वहाँ सभा से किराया नहीं लेते। एक बार सभा के कार्यालय में पण्डित जी का बिल आया जिसमें उन्होंने सहाले से लाहौर तक का किराया तो लिखा था। लाहौर से सहिला तक का नहीं लिखा था। मंत्री के पूछने पर आपने उत्तर दिया—लाहौर से सहाले तक का किराया मैंने जान बूझकर नहीं लिखा क्योंकि वहाँ आधा कुछ मेरा निज का काम था और ऐसा किराया मैं वसूल नहीं किया करता।

आर्य पथिक में किस प्रकार की निर्भयता थी और वैदिक धर्म के प्रचार और प्रसार के लिये उनका हृदय किस प्रकार कार्य कर रहा था—इस सम्बन्ध में एक दो घटनाओं का ज़िक्र करना अप्रासंगिक न होगा। पण्डित लेखराम मार्च १८९६ में अजमेर के उत्सव में सम्मिलित हुये। नगर कीर्तन में उनके व्याख्यान और बातचीत से कुछ मुसलमान भड़क उठे। ख्वाजाचिश्ती की दरगाह पास थी आर्य भाई डर कर भाग गये। लेखराम अकेले रह गये। उन्होंने कहीं पर सुना था कि विधर्मी के धर्ममन्दिर से तीस कदम की दूरी पर प्रत्येक धर्म प्रचार को अपने मत के समर्थन का अधिकार है। आप दरगाह के द्वार पर पहुँचे और उच्च स्वर से कदम गिनना शुरू किया। मुसलमान इनकी हरकतों को अचरज की निगाह से देख रहे थे। तीसवें कदम पर पहुँच कर लेखराम ने धर्म प्रचार शुरू कर दिया। कब्रपरस्ती और मर्दुमपरस्ती का जबर्दस्त खंडन किया। जब पीछे से कुछ आर्यसमाजी चुपके से लेखराम की हालत देखने गये तो वे आश्चर्यस्तम्भित हो गये। सहस्त्रों मुस्लिम जनता की बड़ी संख्या को उन्होंने वक्ता के आधीन पाया।

जुलाई १८९६ में शिमला में पण्डित जी ने अपने अन्तिम व्याख्यान में इस विषय पर प्रमाण दिये कि इस्लाम के पैग़म्बरों ने खुदाई का दावा करके कुफ्र फैलाया है। मुस्लिम मण्डली में से एक युवक से न रहा गया। उसने चीख कर कहा—काफिरों को काटने वाली मुहम्मदी शमशीर को मत भूलो। लेखराम एक क्षण रुक गये और जिधर से आवाज आई थी, उधर मुँह करके गरजते हुये बोले—'मुझे बुज़दिल मुहम्मदी तलवार की धमकी देता है। मैंने अधर्मी निर्बल मनुष्यों से डरना नहीं सीखा। जानते नहीं हो मैं जान हथेली

पर लिए फिरता हूं।" सारी सभा में सन्नाटा छा गया और फिर किसी ने चूँ तक नहीं की ।

पण्डित जी की ऊहा बुद्धि तो कमाल की थी। उसकी एक घटना और पढ़िये । गुजरात आर्य समाज में आर्य्य पथिक मुसलमानों के "हराम हलाल" मसले पर बोल रहे थे। पण्डित जी का कहना था कि जो जानवर कमज़ोर है वह तो मुसलमानों के लिए हलाल हैं। जो जबर्दस्त हैं वे हराम हैं। इस पर एक मौलवी ने एतराज़ किया क्या चुहिया भी हमारे मजहब में जबर्दस्त होने से ही हराम है। पण्डित जी ने उनसे पूछा कि मौलवी साहब आप शिया हैं या सुन्नी ? उत्तर मिला—शिया। तब पंडित जी ने उत्तर दिया—'मौलवी मुझे आप का कथन सुन कर हंसी आती है। आप शिया होकर चूहे की बुजुर्गी और जबर्दस्ती से इन्कार करते हैं। यही नामुराद चूहा था कि जिनके कर्बला के मैदान में पानी की मशकें काट दीं और बेचारे इमान हुसेन को प्यासा मरवाया। अगर ऐसे दो तीन और जबर्दस्त पैदा हो जायें तो अरब और ईरान में कर्बला की सी कई घटनायें हो जायें।" श्रोतागण यह जवाब सुन कर हंस सड़े। मौलवी साहब ने तो चुप हो ही जाना था।

इतनी तेजस्विता और इतनी तेज़ी साधारण संसार में बहुत देर तक नहीं चल सकती। कुछ काल के पीछे दैव ही उसका रास्ता रोकने का उपाय सोचने लगता है। महर्षि के जीवन की सामग्री एकत्र हो जाने पर जब आपने उसे लिखने का काम आरम्भ किया तब आप जालन्धर में रहने लगे। उस समय जालन्धर आर्यसमाज का बहुत बड़ा केन्द्र बन चुका था। उसके संस्थापकों में दो महानुभाव मुख्य थे—एक ला० देवराजजी और दूसरे ला० मुन्शीराम जी। लाला देवराज जी कन्या महाविद्यालय के संचालन में एकाग्रता से लग गये और ला० मुन्शीराम जी पहले जालन्धर आर्यसमाज के प्रधान और फिर प्रचार का कार्य बढ़ जाने पर आर्य प्रतिनिधि सभा के भी प्रधान बने। इसके अतिरिक्त आपने 'सद्धर्म प्रचारक' नाम के साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन आरम्भ किया। पं० लेखराम जी का उनसे बहुत प्रेम था। जीवन के अन्तिम हिस्से में तो आर्य-पथिक मानो उनके अग्नि मित्र बन गये थे। पण्डित जी को जालन्धर में रहने से एक यह भी लाभ था कि सद्धर्म प्रचार प्रेस से पुस्तकों की छपाई में भी बहुत सहायता मिल सकती थी।

१८९७ के आरम्भ में वह जालन्धर छोड़ कर लाहौर चले गये। यह

स्थान परिवर्तन किसी निमित्त से हुआ या दैवयोग से यह कहना कठिन है। कहा जा सकता है कि यदि कोई निमित्त भी था तो उसका कारण ईश्वरेच्छा था। आर्य पथिक को अमर पदवी मिलनी थी यह भी उसका एक कारण बन गया। मिर्जा अहमद कादियानी के साथ इनका विवाद रहता ही था और धीरे-धीरे जब मिरजा के पास आर्य-पथिक की जबरदस्त युक्तियों का कोई उत्तर न रहा तो वह धमकियों पर उतर आया। मुबाहिसे में हार कर मुबाहिला (शापों का आक्रमण) जारी कर दिया। गुलाम अहमद ने यह भविष्यवाणी की कि यदि मैं सच्चा हूं और लेखराम झूठा है तो एक साल के अन्दर अन्दर खुदा की मार पड़ेगी। इसके उत्तर में पण्डित लेखराम जी ने यह आशीर्वाद दिया कि ईश्वर की ऐसी कृपा होगी कि मिरजा झूठ को छोड़ कर सच को मानने लगेगा। मिरजा ने जो भविष्यवाणी की, प्रतीत होता है कि उसकी पूर्ति के उद्योग में भी कोई कसर न छोड़ी।

पण्डितजी के बलिदान की घटना का संक्षिप्त और हृदयस्पर्शी वर्णन स्व० पं० चमूपति जी के शब्दों में पढ़िये। वे अपने इतिहास में लिखते हैं—

"मार्च १८९७ के आरम्भ में एक कुरूप मुसलमान इनके पास शुद्धि के लिए आया इन्होंने उसका आगा पीछा कुछ नहीं पूछा। पूर्ण विश्वास-पूर्वक अपने पास रख लिया। दिन को वह इनके पास रहता और रात को अन्यत्र कहीं चला जाता। इन्हें यह भी ज्ञात नहीं था कि वह रात को कहां रहता है ?

"६ मार्च को वह कम्बल ओढ़ कर आया और कांपने लगा। पूछने पर उसने बताया कि उसे बुखार और पेट का दर्द है। पण्डित जी उसे डाक्टर के पास ले गये। डाक्टर ने कम्बल उतार कर लेप करना चाहा पर उसने पीने की दवाई मांगी। इन्होंने वही ले दी। एक बजाज की दुकान पर ले जाकर माता जी को दिखाने के लिए उसे कपड़े ले दिये। बजाज ने सावधान किया कि यह भयंकर आकृति का मनुष्य मृत्यु की मूर्ति प्रतीत होता है। परन्तु पण्डित जी तो आज स्वयं मृत्यु से ही प्यार करने चले थे। यम के दूत को ही कभी का घर पर निमन्त्रण दे रखा था। उसी को मानो यह सद्धर्म का पिपासु समझते रहे थे।

"घर पर आकर ऋषि की जीवनी लिखने बैठे। वह भी पास की एक कुर्सी पर बैठ गया। ज्यों ही थक कर उन्होंने कलम रखा और छाती खोलकर अंगड़ाई लेने लगे, उस अभ्यस्त हत्यारे ने वहीं छुरी निकाल कर इनके पेट में

घोंप दी। और घुमा-घुमा कर एक आंतड़ी तो काट ही डाली और आठ बड़े और अनेक छोटे घाव कर दिये। पण्डित जी ने एक हाथ से अपनी अंतड़ियों को संभाला और दूसरे हाथ से उससे दस्तपंजा लिया। इसी कशमश में सीढ़ियों तक पहुंच गये। देवी लक्ष्मी ने पहुंच कर इन्हें रसोई में धकेल दिया और वृद्धा माता ने घातक को जा पकड़ा। पर इतने में हत्यारे के हाथ बेलन आ गया जिसकी दो चोटों से उसने माता जी को अचेत कर नीचे फेंक दिया और अपने आप यह जा वह जा आन की आन में आंख से ओझल हो गया।

"इस घायल अवस्था में पण्डित जी को हस्पताल ले जाया गया। वहाँ भी इनका प्रभु पर विश्वास एवं अटूट धैर्य नहीं टूटा, नहीं टूटा। गायत्री तथा 'विश्वानि देव' का पाठ ही करते रहे। मरते दम तक न माता की चिन्ता थी न प्राणप्रिया लक्ष्मी की। चिन्ता थी तो इस बात की कि 'आर्यसमाज' से तहरीरी काम बन्द नहीं होना चाहिए।' यह कहा और रात्रि दो बजे विदा हुए।

"वीर की अर्थी के साथ सहस्त्रों मनुष्यों का तांता लग रहा था। लाहौर के नरनारी इस निर्भीक युवक के बलिदान पर अत्यन्त क्षुब्ध थे। पृथ्वी पर हर जगह फूल ही फूल दीखते थे। गुलाब के पानी के कंटर पर कटर बहा दिये गए। आर्य जाति में एक नई स्फूर्ति थी; नया आवेग था। प्रतीत यह होता था कि एक धर्मवीर के बलिदान ने सम्पूर्ण जाति को नया जीवन प्रदान कर दिया है। पवित्रता का पारावार था। उत्साह ठाठें मार रहा था। साहस की बाढ़ आ गई थी। जिधर देखो कर्मण्यतापूर्ण वैराग्य था।

"श्मशान भूमि में अद्भुत दृश्य था। शहीद की चिताग्नि ने मानो सब नरनारियों के परस्पर भेदों को जलाकर राख कर दिया था। सबके मन में जो भाव था उसे लाला मुन्शी राम जी ने अपने भावुकता से भरे हुए भाषण में इन शब्दों में प्रकट किया था—"हम सब को चाहिए कि हम वीर की चिता के समीप खड़े हो कर यह प्रतिज्ञा करें कि आपस की फूट को हटाकर प्रेमपूर्वक मिलकर काम करेंगे। यदि फूट चलती रही तो मेरे लिए काम करना तो बहुत असम्भव हो जायगा।"

"श्मशान भूमि के भाषणों में पण्डित जी का यह वाक्य सुनाया गया कि 'मेरे पीछे तहरीर का काम बन्द न होने पावे।' आर्य नेताओं ने उपस्थित जनता के सामने संकल्प प्रकट किया कि तहरीर के काम को बन्द न होने देंगे।" किन्तु क्या इस प्रतिज्ञा का हम पालन कर सके?

साथी से !

१

साथी, अभी बहुत चलना है !
रुके तुम्हारे चरण अभी क्यों ?
झुके तुम्हारे नयन अभी क्यों ?
बैठ शिला के कंगूरों पै
जाने कब तक यूँ गलना है।
साथी ! अभी बहुत चलना है !

२

ओले - वर्षा - तूफ़ानों में
आतप में औ, भूचालों में,
जीवन की आहुति दे - दे कर
दीपक सा तुझको जलना है।
साथी, अभी बहुत चलना है !

३

नीरवता युत निशि हो काली
चाहे छायी हो अंधियाली
पर प्रकाश की बाती बनकर
ज्योतित सारा जग करना है।

४

साथी, अभी बहुत चलना है !
मंज़िल दूर भले हो क्या ग़म
राह बनाते जाना हरदम,
प्रखर खौलते हुए तैल में
जीवन को ज्योतित करना है।
साथी, अभी बहुत चलना है !

प्रयाण—गान

१

अजस्र वारि—धार हो
समुद्र भी अपार हो,
अटूट या पहाड़ हो
रुको नहीं, तने रहो !
झुको नहीं, ठने रहो।

२

चमक रही हो दामिनी
डरावनी हो यामिनी
या काँपतीं हो मेदिनी
हटो नहीं, डटे रहो
लुको नहीं, सटे रहो !

३

हो तेग़ चम-चमा रही
हो वायु भन-भना रही,
हो आग दम-दमा रही
मुड़ो नहीं, खड़े रहो !
छिपो नहीं, अड़े रहो !

४

भले ही रक्त-स्नान हो
या नर्क का पयान हो
परन्तु ये निशान हो
बुझो नहीं, जले रहो
रुको नहीं, बढ़े रहो !

—रघुनाथ प्रसाद—

—श्रोम्प्रकाश त्यागी

आनन्द व परमानन्द कैसे मिले ?

आज सभा-स्थल पर इतनी भीड़ हो गई कि उसे नियन्त्रित करना कठिन हो गया। कठिनाई उस समय उत्पन्न हो गई जब महिलाएँ बड़ी संख्या में आ गईं। महिलाओं के आने से सभा का रूप ही बदल गया। प्रधानाचार्य महोदय बड़ी कठिनाई में पड़ गये कि उनके बैठने की व्यवस्था कैसे की जाय; परन्तु इस समस्या का समाधान महिलाओं ने स्वयं कर लिया। वे सब दूर पेड़ के नीचे जा बैठीं। लाउड स्पीकर वहाँ लगा था, इसलिए उन्हें प्रवचन सुनने में कोई कठिनाई नहीं हुई।

महात्माजी ने नियमानुसार ठीक समय पर वेद पाठ के पश्चात् प्रवचन इस प्रकार प्रारम्भ कर दिया :—"उपस्थित बहनो, भाइयो व बच्चो! जैसा मैंने पहले संकेत किया था, मनुष्य केवल शरीर ही का नाम नहीं है, अपितु इन्द्रियों, मन, बुद्धि एवं आत्मा का नाम है। इन चारों तत्त्वों के समूह का नाम ही मनुष्य है। इन चारों के अपने गुण-स्वभाव, इच्छा व कार्य हैं। इन्हीं चारों तत्त्वों को महर्षि पतंजलि ने अपने योगदर्शन में अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमय कोष, विज्ञानमय कोष तथा आनन्दमय कोष के नाम से बतलाया है। सुख, शान्ति, आनन्द व परमानन्द क्रमशः इन्हीं कोषों से सम्बन्ध रखते हैं। मनुष्य जिस-जिस कोष से अपना सम्बन्ध स्थापित कर उसमें प्रगति करता है उसी के अनुरूप प्राप्ति उसे होती जाती है। दुर्भाग्यवश अधिकतर व्यक्ति अन्नमय कोष तक ही सीमित रह जाते हैं। इसलिए उन्हें सुख के अतिरिक्त कुछ नहीं प्राप्त होता है। परन्तु जीवन की सफलता व सार्थकता इन चारों की ही प्राप्ति में है।

विद्यार्थी—महात्माजी! आनन्द का स्वरूप क्या है ?

महात्मा—बच्चे! आनन्द अनुभव करने की वस्तु है, वर्णन करने की नहीं।

विद्यार्थी—महात्माजी ! भला यह कैसे हो सकता है कि उसका वर्णन न किया जा सकता हो ?

महात्मा—आपने चीनी तो खाई ही होगी। कृपया उसके स्वाद अर्थात् मिठास के स्वरूप का वर्णन करें।

(विद्यार्थी मौन खड़ा रह गया।)

महात्मा—संसार में जो वस्तु आँख से दिखलाई नहीं देती एवं हाथ से छुई नहीं जा सकती; परन्तु अनुभव की जाती है उसका वर्णन करना बड़ा कठिन है। अनुभव करने की दृष्टि से आप इसका अनुभव सुषुप्ति अवस्था में कर सकते हैं।

विद्यार्थी—सुषुप्ति अवस्था में तो स्वप्न दिखलाई देते हैं। क्या स्वप्न को ही आप आनन्द कहते हैं ?

महात्मा—स्वप्नावस्था में जब मन का सम्बन्ध आत्मा से बना रहता है तो स्वप्न दिखलाई देते हैं; परन्तु जब शरीर व मन दोनों से सम्बन्ध छूटकर आत्मा अपने में स्थित हो जाता है, तब उसे आनन्द की छाया का अनुभव होता है।

विद्यार्थी—सुषुप्ति अवस्था में प्राप्त आनन्द की मात्रा तो याद नहीं रहती है। क्या ऐसा भी कोई उपाय है कि जाग्रत अवस्था में भी आनन्द की अनुभूति हो जाय ?

महात्मा—हाँ, ऐसे कई उपाय हैं जब जाग्रत अवस्था में मनुष्य आनन्द का अनुभव कर सकता है। इसका मौलिक सिद्धान्त यह है कि जब इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि व आत्मा चारों का किसी एक बिन्दु पर केन्द्रीयकरण या निरोध हो जायगा, वहाँ आनन्द स्वतः अनुभूत हो जायगा।

विद्यार्थी—ऐसे कौन-से कार्य हैं जिनसे इन चारों तत्त्वों का केन्द्रीयकरण होकर आनन्द का प्रादुर्भाव होता है ?

महात्मा—सेवा, परमार्थ, प्रेम, संतोष, त्याग, सत्याचरण आदि ऐसे कार्य हैं जिनसे मानव के चारों तत्त्वों में समन्वय होता है।

विद्यार्थी—क्या ऐसा भी कोई उपाय है कि मनुष्य अपनी आत्मा को जाग्रत अवस्था में इन्द्रियों, मन, बुद्धि से अलग करके आनन्द की अनुभूति कर सके ?

महात्मा—हाँ, योग के द्वारा मनुष्य आनन्द की प्राप्ति जाग्रत अवस्था में

भी कर सकता है। यही विज्ञान भारत की अपनी अलौकिक खोज है, जिसने आज समूचे संसार को चकित कर रखा हैं।

विद्यार्थी—कुछ लोगों का कहना है कि योगाभ्यास केवल पुरुष ही कर सकते हैं, स्त्रियाँ नहीं। इसमें कहाँ तक सत्यता है ?

महात्मा—यह बात सत्य नहीं है। स्त्री-पुरुष दोनों ही समान रूप से योगाभ्यास कर सकते हैं।

विद्यार्थी—कुछ लोगों का कहना है कि शराब आदि नशीली वस्तुओं के सेवन से भी मनुष्य को आनन्द की अनुभूति हो जाती है।

महात्मा—नशीली वस्तुओं से आनन्द की प्राप्ति की कल्पना सर्वथा निराधार है। यह अपने कष्टों को भुलाने का क्षणिक उपाय है; परन्तु नशा उतरने के पश्चात् चौगुने शारीरिक कष्ट सामने आकर खड़े हो जाते हैं। इसीलिए नशीली वस्तुएँ और आनन्द दोनों एक-दूसरे के विरोधी हैं।

परमानन्द क्या है ?

विद्यार्थी—महात्माजी ! आनन्द और परमानन्द में क्या भेद है ?

महात्मा—बच्चो ! आज मुझे यह देखकर हर्ष हो रहा है कि कहाँ तो एक दिन धर्म के नाम से लोग बिदकते थे, कहाँ आज आप परमानन्द जैसे गम्भीर विषय पर चर्चा करने की उत्सुकता प्रकट कर रहे हैं। बहुधा इस विषय को वही लोग उठाते हैं, जिन्हें बुढ़ापे में मृत्यु साफ़ दिखलाई देने लगती है परन्तु सही मार्ग यही है कि यात्रा को प्रारम्भ करने से पूर्व यात्रा का अन्तिम लक्ष्य स्पष्ट मस्तिष्क में आ जाना चाहिए। परमानन्द का स्वरूप क्या है और इसकी प्राप्ति कैसे हो सकती है ? यही ऐसे प्रश्न हैं जिन्होंने विभिन्न मत-मतान्तरों की पृथकता को स्थिर रखा हुआ है। अन्यथा सभी मत एकरूप हो जाते।

परमानन्द को ही विभिन्न धर्मों में मोक्ष, स्वर्ग, प्रभु का राज्य, जन्नत आदि नाम से याद किया गया है। इसी की प्राप्ति कराने का सब ठेका लेते हैं। सभी का यह कहना है कि उनके बतलाये मार्ग के अतिरिक्त स्वर्ग की प्राप्ति होना असम्भव है। सभी ने परमानन्द के स्वरूप का अपनी-अपनी भाषा में वर्णन किया है। सभी ने वहाँ संसार के समस्त सांसारिक सुखों की प्राप्ति की कल्पना की है। वैदिक धर्म को छोड़ सभी ने स्वर्ग को एक स्थानविशेष

मानकर वहाँ शराब, स्त्रियाँ, स्वर्ण आदि समस्त भोग सामग्रियाँ इच्छानुसार मिलने का आश्वासन दिया है।

वैदिक धर्म की दृष्टि में परमानन्द उस अवस्था का नाम है जहाँ दुःख, कष्ट, वेदना आदि का सर्वथा अन्त होकर ठोस रूप में आनन्द ही आनन्द हो। जिस आनन्द के यहाँ मात्रा के रूप में दर्शन होते हैं वह वहाँ अपनी पूर्णता में लम्बे समय तक मिलता है।

विद्यार्थी—महात्मा जी ! अन्य धर्मावलम्बी भी तो यही कहते हैं। फिर वैदिक धर्म और उनमें अन्तर क्या रहा ?

महात्मा—अन्तर बड़ा भारी है। अन्य धर्माविलम्बियों का विचार है कि स्वर्ग इस लोक की भाँति है। वहाँ आत्मा सशरीर रहकर परमानन्द का भोग करता है। परन्तु वैदिक धर्म का कहना है कि सशरीर अथवा स्थूल शरीर के रहने पर बुढ़ापा, मृत्यु आदि अनेक कष्ट होंगे ही। स्थूल शरीर सुख तथा दुःख दोनों का ही कारण है। अतः शरीर के रहते पूर्ण आनन्द की कल्पना अवैज्ञानिक तथा असत्य है।

विद्यार्थी—व्यक्ति शरीर के द्वारा ही तो आनन्द अथवा सुख-दुःख अनुभव करता है, परन्तु जब शरीर ही नहीं होगा तो आनन्द का अनुभव कैसे सम्भव है ?

महात्मा—सुख, दुःख आदि का अनुभव करने वाला शरीर नहीं, अपितु आत्मा है। शरीर तो केवल माध्यम है। यदि शरीर के साथ आत्मा का सम्बन्ध न तो फिर केवल शरीर सुख-दुःख अनुभव करने में एकदम असमर्थ हो जाता है। जैसे जब अस्पताल में डाक्टर क्लोरोफार्म सुंघाकर या शरीर के विशेष अंग को दवा से सु अथवा चेतना रहित कर चीर-फाड़ करता है तो आत्मा को लेश-मात्र भी क्‍ नहीं होता। इसका कारण यही है कि डाक्टर दवा के द्वारा ज्ञानवाहिनी ना। ें को अचेतन करके शरीर का आत्मा से सम्बन्ध काट देता है।

विद्यार्थी—इसका दूसरा पहलू यह भी तो है कि शरीर के बिना आत्मा को आनन्द भी नहीं हो सकता है।

महात्मा—सुषुप्ति अवस्था में स्थूल शरीर का सम्बन्ध आत्मा से नहीं रहता, तब उसे कैसे आनन्द अनुभव होता है ?

विद्यार्थी—महात्मा जी ! शरीर के बिना आत्मा कैसे आनन्द अनुभव कर

सकता है ?

महात्मा—बच्चे ! आत्मा सूक्ष्म शरीर के द्वारा आनन्द अनुभव करता है। स्वप्नावस्था में इसी सूक्ष्म शरीर से वह देखता-सुनता है। स्वर्ग में इसी के द्वारा वह आनन्द अनुभव करता है।

विद्यार्थी—स्वर्ग जब स्थानविशेष का नाम नहीं है तो फिर क्या जीवात्मा आनन्द हवा में लेता है ? भोग सामिग्रियों के बिना आनन्द की कल्पना कैसे की जा सकती है ?

महात्मा—मोक्षावस्था में आत्मा ब्रह्मलोक अथवा सर्वव्यापक ईश्वर के महान् विश्व में विद्यमान रहता है और इच्छा मात्र से मोक्ष में आनन्द का अनुभव करता है। भोग सामग्रियां तो जड़ शरीर के लिये ही चाहियें। परन्तु आनन्द भोग सामग्रियों को नहीं कहते; उसका अस्तित्व इनसे सर्वथा अलग है। जैसे आंख, नाक, कान आदि भौतिक इन्द्रियों को बाहर से बन्द करके अन्तर्ध्यान में जब मनुष्य बैठता है तो उसी क्षण उस आनन्द की मात्रा का कुछ अनुभव होने लगता है।

विद्यार्थी—क्या स्वर्ग और मोक्ष एक ही अवस्था का नाम है ?

महात्मा—स्वर्ग सांसारिक सुखी जीवन का नाम है। परन्तु मोक्ष आत्मा की एक विशेष अत्यन्त प्रबुद्ध और विकसित अवस्था का नाम है।

विद्यार्थी—जब शरीर का सम्बन्ध छूटते ही आत्मा को आनन्द अनुभव होने लगता है या मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है, तब मृत्यु के बाद सभी को मोक्ष की प्राप्ति हो जाती होगी ?

महात्मा—मृत्यु के पश्चात् शरीर से तो पीछा छूट जाता है; शरीर द्वारा किये कर्मों के संस्कार तो सूक्ष्म रुप में जीवात्मा के सूक्ष्म शरीर के साथ चले जाते हैं, जो उसे मोक्ष की ओर न ले जाकर फिर संसार में आने को विवश करते रहते हैं। वास्तव में मृत्यु के पश्चात् आनन्द नहीं, अपितु जीवात्मा की एक विशिष्ट स्थिति रहती है। सांसारिक मोह के संस्कार तो उसके साथ मृत्यु के बाद रहते हैं, परन्तु शरीर के बिना संसार में उनकी अभिव्यति में असमर्थ रहता है। इसीलिये संसार में पुनः आने और पूर्व जीवन के कर्मानुसार शरीर प्राप्त करने के लिये बाध्य होता है।

विद्यार्थी—मोक्ष की प्राप्ति में मूल बाधा क्या है ?

महात्मा—कर्मों की वृत्तियाँ और संस्कार ही मोक्ष की प्राप्ति में बाधा

हैं। इसकी समाप्ति के बिना मोक्ष की प्राप्ति सर्वथा असम्भव है।

विद्यार्थी—बुरे कर्मों के संस्कार ही बाधक होते हैं या अच्छे कर्मों के संस्कार भी बाधक होते हैं। लोगों का कहना तो यह है कि अच्छे कर्म करने वाले व्यक्ति को मोक्ष मिल जाता है।

महात्मा—अच्छे और बुरे दोनों ही प्रकार के संस्कार मानव की मुक्ति में बाधक होते हैं। लोगों को यह भ्रान्ति है कि शुभ कर्म करने से मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है।

विद्यार्थी—महात्मा जी! आपने तो आज सचमुच ही आश्चर्यजनक बात कह दी है। संसार के सभी धर्म—यहाँ तक कि हिन्दू धर्म भी—गला फाड़-फाड़ कर यही कहते आये हैं कि शुभ कर्म करने से मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है; परन्तु आपने आज इसका भी विरोध कर दिया। इसका तो साफ़ अर्थ यह हुआ कि मोक्ष की किसी को प्राप्ति हो ही नहीं सकती; क्योंकि मनुष्य कर्म के बिना एक क्षण भी नहीं रह सकता और कर्म अच्छे या बुरे दो ही प्रकार के होते हैं।

महात्मा—भाई! राग व द्वेष अच्छे-बुरे कर्मों का आधार होते हैं। राग व द्वेष के आधार पर किये गये कर्मों से उत्पन्न संस्कार आत्मा के बन्धन का कारण होते हैं। दोनों ही प्रकार के कर्म संसार से मोह उत्पन्न करते हैं। मोह आत्मा के पुर्नजन्म का कारण होता है। इस प्रकार अच्छे-बुरे दोनों ही कर्मों के संस्कार और वृत्तियां जीवात्मा को सुख-दुःख भोगने के लिये पुर्नजन्म को बाध्य करते हैं। अच्छे कर्मों के संस्कार आत्मा को संसार में आने को न खींचें, यह कैसे सम्भव है?

विद्यार्थी—जब अच्छे-बुरे दोनों ही कर्मों के संस्कार आत्मा के बन्धन का कारण हैं तो फिर वह कौन-सा कर्म है जो आत्मा के बन्धन का कारण नहीं होता?

महात्मा—राग-द्वेष से रहित निष्काम कर्म किसी प्रकार के संस्कार-वृत्तियाँ उत्पन्न नहीं करतीं। इसलिये राग-द्वेष से रहित निष्काम कर्म ही मोक्ष प्राप्ति में सहायक होते हैं। योगिराज कृष्ण महाराज ने इसी रहस्य को गीता में इस प्रकार कहा है—

रागद्वेष वियुक्तैस्तुः विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यै विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति॥

राग और द्वेष से पृथक् हुई और अपने वश में हुई इन्द्रियों से विषयों का सेवन करता हुआ विनीत आत्मा परमानन्द को प्राप्त करता है।

विद्यार्थी---राग-द्वेष का कारण क्या है ?

महात्मा – राग-द्वेष का कारण अज्ञान है अर्थात् अपने सही स्वरूप को न जानना।

विद्यार्थी—महात्माजी ! यदि कर्मों के संस्कार ही मोक्ष की प्राप्ति में सब से अधिक बाधक हैं तब तो मनुष्य का मोक्ष प्राप्त करना सर्वथा असम्भव है। कारण कि निष्काम कर्म करके वह अपने वर्तमान कर्मों के बन्धन से तो मुक्ति प्राप्त कर सकता है; परन्तु अपने पूर्व जन्म के संचित कर्मों से उसे मुक्ति किस प्रकार मिल सकेगी ?

महात्मा—प्रश्न अति महत्त्वपूर्ण है। भारत के ऋषि-महर्षियों ने इन समस्त प्रश्नों का समाधान कर मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया हुआ है। महर्षि पतञ्जलि के योग दर्शन में विस्तार से इन सब बातों पर प्रकाश डाला गया है। उन्होंने इस प्रश्न के उत्तर में बड़ी ही सुन्दर युक्ति देते हुए कहा है कि जैसे किसी खेत में पड़े हुए बीज पानी, धूप, हवा आदि पाकर पनप कर वृक्ष रूप हो जाते हैं उसी प्रकार मानव के अन्दर पड़े बीज रूप पूर्व जन्म के संस्कार जब इस जीवन में राग-द्वेष का खाद-पानी प्राप्त करते हैं तो वे नये कर्मों के रूप में प्रकट हो जाते हैं। यदि मनुष्य उन्हें राग-द्वेष का खाद-पानी देना बन्द करदे तो वे भूमि में ही सूखकर समाप्त हो जाते हैं। इसलिये निष्काम कर्म करने से वर्तमान तथा भूतकाल दोनों ही जन्मों के कर्म-बन्धन से मुक्ति मिल जाती है।

विद्यार्थी—क्या निष्काम कर्म के अतिरिक्त परमानन्द की प्राप्ति का अन्य कोई मार्ग भी है ?

महात्मा—मोक्ष-प्राप्ति के तीन मार्ग बतलाये गये हैं अर्थात्

(१) ज्ञान योग

(२) कर्म योग

(३) उपासना योग

तत्त्व ज्ञान की प्राप्ति के पश्चात् राग-द्वेष की स्वतः समाप्ति होकर मनुष्य भौतिक जगत् को लक्ष्य न मानकर साधन के रूप में उसे प्रयोग करता है! जिस प्रकार एक यात्री रेल का प्रयोग करता हुआ उसके प्रति मोह

उत्पन्न नहीं करता उसी प्रकार इस शरीर का जीवात्मा प्रयोग करता है। कर्म-योग का वर्णन किया जा चुका है। उपासना योग अति महत्त्वपूर्ण है और भारत को विश्व की विचित्र देन हैं। इसके द्वारा साक्षात् भगवान् के समीप बैठकर मनुष्य ईश्वरीय गुणों को धारण कर मुक्ति प्राप्त कर लेता है। वह इसी जीवन में मुक्त रूप हो जाता है। पर ये तीनों मार्ग पृथक्-पृथक् नहीं, किन्तु एक-दूसरे के साथ सर्वथा सम्बद्ध हैं।

विद्यार्थी—क्या योग के द्वारा इसी जीवन में ईश्वर का साक्षात्कार हो जाता है ?

महात्मा—निश्चित रूप से योग-क्रिया जीवात्मा को इसी जीवन में ईश्वर चरणों में बैठा देती है।

विद्यार्थी—योग का स्वरूप क्या है ?

महात्मा—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान व समाधि इन आठ अंगों के योग को अष्टांग योग कहते हैं।

विद्यार्थी—योग के द्वारा इसी जीवन में ईश्वर दर्शन तथा परमानन्द प्राप्ति का रहस्य क्या है ?

महात्मा—इस क्रिया द्वारा मनुष्य मन पर काबू कर अपनी इन्द्रियों अन्तर्मुखी बना लेता है। मन गति के बिना रह नहीं सकता। जब बाह्य जगत् में उसे गति का मार्ग नहीं मिलता तो वह अन्दर की ओर गति प्रारम्भ कर देता है। योगी पहले उसे किसी एक बिन्दु पर केन्द्रित कर देता हैं और फिर आगे चलकर वह बिन्दु भी समाप्त कर जीवात्मा अपने में स्थित हो जाता है। जीवात्मा के अपने में स्थित होते ही उसके ज्ञान चक्षु खुल जाते हैं और वह जगत्, जीवात्मा और परमात्मा तीनों को प्रत्यक्ष देखने लगता है।

विद्यार्थी—यह अवस्था तो सुषुप्ति में होती है। तब मनुष्य को आत्मदर्शन या ईश्वर दर्शन क्यों नहीं होते ?

महात्मा—सुषुप्ति अवस्था में न अपने दर्शन होते हैं और न ईश्वर के। यह अवस्था तो छायामत्र है। दर्शन तो उसी अवस्था में होते हैं, जब आत्मा चेतनावस्था में ज्ञानपूर्वक प्रस्थान करता है। योगावस्था में जीवात्मा जाग्रत जैसी अवस्था में ही होता है। अन्तर इतना ही है कि इस समय उसका सम्बन्ध शरीर और बाह्य जगत् से न रहकर अन्तः जगत् से रहता है।

विद्यार्थी—आपने कहा था कि मोक्ष प्राप्ति में मूल बाधा कर्मों के संस्कारों के बन्धन की है। सो योग के द्वारा उन कर्म-बन्धन से कैसे मुक्ति होगी ?

महात्मा—इस शंका का समाधान करते हुए महर्षि पतञ्जलि ने कहा है कि जैसे दीपक की ज्योति धीरे-धीरे दीपक के समस्त तेल को जलाकर अन्त में स्वयं भी समाप्त हो जाती है उसी प्रकार जब योगी मन को किसी एक बिन्दु पर केन्द्रित कर देता है तो शरीर रूपी दीपक में स्थित राग-द्वेष का तेल मन रूपी ज्योति द्वारा धीरे-धीरे जलने लगता है और जब अन्दर के समस्त संस्कार इस प्रकार भस्म हो जाते हैं तब मन का वह बिन्दु भी समाप्त होकर आत्मा को मुक्त बना देता है। एक अन्य उदाहरण भी योग दर्शन में व्यास मुनि ने अपने भाष्य में दिया है। जिस प्रकार चने का दाना जब भड़भूजे की भट्टी में गर्म होकर बाहर निकलता तब उससे किसी पौधे की उत्पत्ति सम्भव नहीं रहती, इसी प्रकार जब कर्म समुच्चय ईश्वर प्रणिधान, तपस्या, अष्टांग योग और भक्ति की अग्नि में परिपक्व होता है, तब उनसे नये कर्मों का उत्पादन नहीं होता। कर्म समुच्चय का प्रशमन होता है, इसे ही योगदर्शन में निर्बीज समाधि कहा गया है। सबीज समाधि में कर्म समुच्चय का पुनर्भव होता रहता है।

विद्यार्थी—लोगों का कहना है कि मुक्ति प्राप्त करने के पश्चात् जीवात्मा सदैव के लिए मुक्त होकर परमानन्द प्राप्त करता है।

महात्मा—सीमित कर्म का सीमित ही फल होता है। जीवात्मा की शक्ति व प्रयत्न सीमित होने से मोक्षावस्था असीम न होकर सीमित ही होती है।

विद्यार्थी—महात्मा जी ! आपने परमानन्द की प्राप्ति का बड़ा लम्बा मार्ग बतला दिया है। इसके चक्कर में कौन पड़ेगा ? दूसरे धर्मावलम्बी तो कहते हैं कि अमुक महापुरुष, पैगम्बर व प्रभु-पुत्र पर विश्वास लाकर विशेष पूजा पाठ करने से मोक्ष की प्राप्ति स्वतः हो जाती है।

महात्मा—यह बात अवैज्ञानिक, तर्कहीन एवं अज्ञानतापूर्ण है। केवल धोखा है।

विद्यार्थी—धोखा नहीं। उनका कहना है कि खुदा के पैगम्बर तथा प्रभु-पुत्र व्यक्ति के पापों को क्षमा कर देंगे या उसके पापों को अपने ऊपर ले लेंगे तो ईश्वर उनके भक्त लोगों को मोक्ष अथवा स्वर्ग प्रदान कर देगा।

महात्मा—ऐसे करने से ईश्वर न्यायकारी नहीं रहता। उस का नियम

है कि मनुष्य को अपने कर्मों का फल मिलता है। यदि वह दूसरों की सिफ़ारिश पर पापों को क्षमा करने लगे तो फिर उसके न्याय का आधार ही समाप्त हो जाता है। इस प्रकार की विचार धारा से तो पापों की वृद्धि होकर मनुष्य मोक्ष-प्राप्ति से सर्वथा विमुख हो जाता है। जो ऐसा कहते हैं, वे लोगों को पथभ्रष्ट कर उनके साथ अन्याय करते हैं। यह वैज्ञानिक युग है। अन्धविश्वास के सहारे किसी बात को कैसे माना जा सकता है। इसमें किसी विशेष धर्म की मान्यता का प्रश्न नहीं, अपितु किसी भी मान्यता की युक्तिपूर्वक सिद्धि का प्रश्न है। वैदिक धर्म ने अपनी मान्यता को युक्तियों के आधार पर सत्य सिद्ध किया है, जिसे आज का एक वैज्ञानिक भी असत्य सिद्ध नहीं कर सकता।

विद्यार्थी—स्वर्ग-नरक कहाँ हैं ?

महात्मा—बच्चे ! सुखी जीवन का नाम स्वर्ग और दुःखी जीवन का नाम नरक है। दोनों इस जगत् में प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में आते रहते हैं।

विद्यार्थी – तो क्या स्वर्ग और मोक्ष दोनों अलग-अलग हैं।

महात्मा—हाँ, स्वर्ग तो केवल वर्तमान जगत् में एक मानसिक अनुभूति का नाम है, पर मोक्ष ब्रह्म में सतत विचरण करने का नाम है। ब्रह्म आनन्दमय है। इसलिये जीवात्मा भी उसके उस आनन्द का उपभोग करता है।

महात्मा जी ने घड़ी की ओर देखकर प्रवचन समाप्त कर दिया और शान्ति पाठ के पश्चात् सभा विसर्जित हुई।

सत्यार्थ प्रकाश पढ़ो !

ऋषि दयानन्द ने जग का, भारी उपकार किया है।
सत्यार्थ प्रकाश बना कर, सत्यार्थ प्रकाश किया है।।
सत्यार्थ प्रकाश हुआ जब, तम प्रिय उलूक सब भागे।
सदियों से सोने वाले, गहरी निद्रा से जागे।।
सत्यार्थ प्रकाश प्रभा से, मत पँथ मज़हिब सारे।
हो गए सजग सबने ही, अपने सिद्धान्त सुधारे।।
सत्यार्थ प्रकाश सदा ही, जग के सन्ताप हरेगा।
सारा मिथ्यार्थ हरेगा, सत्यार्थप्रकाश करेगा।।

—जयनारायण व्यास

सरदार नाहर खाँ !

इन्सान की कमज़ोरियों में एक बड़ी कमजोरी यह है कि वह दूसरों को अपने से अधिक देखना पसन्द नहीं करता। अगर कोई व्यक्ति बलवान होता है, तो दूसरे लोग उससे डाह करने लगते हैं। इतना ही नहीं वे इस ताक में रहते हैं कि ऐसे व्यक्ति का ख़ातमा कर दिया जाये। कई श्रेष्ठ और महान् गुणी व्यक्ति इसी डाह के कारण खटपटियों के जाल में दुनियां से विदा हो गये और उनके चले जाने से दुनिया ग़रीब ही हुई है।

अपना विकास करके, संसार में श्रेष्ठ बनने के बदले लोगों का नाश करके श्रेष्ठों की श्रेणी में आने की चेष्टा कर चाहे कुछ समय के लिए मान और पूजा प्राप्त कर सकते हैं, पर सही मान और स्थायी प्रतिष्ठा के अधिकारी वे ही हो सकते हैं, जिनमें खुद की कुछ शक्ति हो।

यद्यपि महाराज़ा जसवंतसिंह को बादशाह औरंगजेब ने पठानों का शासन करने के लिए अफ़ग़ानिस्तान भेजा था और उनको रुतबा भी बहुत बड़ा दिया गया था, तथापि वे उनसे भयभीत रहते थे। इसका कारण महाराज की वीरता और चतुराई के अलावा उनके वे स्वामी भक्त सिपाही थे, जो महाराज के लिए प्राण विसर्जन करने को सदैव तत्पर रहते थे। ऐसा ही एक वीर था नाहरसिंह !

ऐसे वीर योद्धाओं के प्रति घृणा या ईर्ष्या करना उन लोगों के लिए स्वाभाविक था, जिनके शरीर में बल और हृदय में साहस का अभाव हो। ऐसे लोगों ने मन-ही-मन महाराजा जसवन्तसिंह से जलने वाले बादशाह औरंगजेब के सामने राठौर नाहरसिंह के लिए कुछ जा बेजा बात की तो क्या अचरज ?

"अगर नाहरसिंह सचमुच अपने को नाहर या शेर समझते हैं तो उसे

राजमहल के पिंजड़े में बंद शेर से कुश्ती लड़नी होगी।" बादशाह ने अपने मुँह लगे लोगों के बहकाने पर निश्चयपूर्वक कहा। उन्होंने सुना और हाँ कह दिया। कुश्ती की घोषणा कर दी गई। शेर के पिंजड़े के चारों ओर दर्शकों की भीड़ थी, उनमें प्रमुख थे बादशाह औरंगजेब खुद। सभी मन में यही कल्पना कर रहे थे कि पिंजड़े के सामने आते ही नाहरसिंह का चेहरा पीला पड़ जायगा और कुछ क्षणों के बाद पिंजड़े में बंद किया हुआ शेर उसकी बोटियों को नोच-नोचकर खाता हुआ नज़र आयगा।

पिंजड़े का फाटक खुला और नाहरसिंह उसमें घुस गया। उसके अंग पर एक धोती के सिवा कोई कपड़ा नहीं था। उसके हाथ में अपनी मजबूत अंगुलियों के सिवा कोई शास्त्र नहीं था। वह अन्दर घुसा। घुसने से पहले बादशाह ने पूछा, "क्यों नाहरसिंह, तुम्हें इस शेर से डर तो नहीं मालूम होता?" "जसवत का शेर किसी शेर से नहीं डरता।" उस साहसी वीर ने गर्व के साथ उत्तर दिया।

पिंजड़े में इस समय दो ही प्राणी हैं—बंदी शेर और हत्या के लिए भेजा गया जसवंतसिंह का शेर नाहरसिंह। शेर के सामने पहुँचकर नाहर सिंह ने आवाज कसी—"आजा ऐ बहादुर शेर, हो जायें दो-दो हाथ दोनों शेरों में!',

शेर टकटकी लगाये नाहर की तरफ देखने लगा। दर्शकों में सन्नाटा छा गया। सभी मन में यही सोच रहे थे कि एक ही झपट्टे यह भीमकाय इन्सान उस प्रबल पशु के तेज़ दाँतों से फाड़ा जाता हुआ दिखाई देगा, परन्तु सबकी कल्पना के विरुद्ध शेर पिछले पाँवों में दुम दबाकर नाहरसिंह से आंख चुराता हुआ पीछे की ओर चला गया।

"जहाँपनाह आपके शेर ने जसवन्त के शेर को पीठ दिखाई हैं। पीठ दिखा कर जाने वाले पर हमला करना तो राजपूती शान नहीं है।" उस सन्नाटे को तोड़ते हुए नाहरसिंह ने कहा। बादशाह ने कोई उत्तर नहीं दिया, पर जब लाख प्रयत्न करने पर भी यह शेर नाहरसिंह की ओर न जा सका और उस तरफ गुर्राने लगा, जिस तरफ़ बादशाह खड़ा था तो औरंगजेब के दिल में निश्चय हो गया कि मौत के सामने जाकर भी बहादुर हिम्मत के साथ खड़े रहते हैं।

गर्व के साथ अपने स्वामी की शान बढ़ाने वाले वीर को अब शेर के पिंजड़े

में बंद रखने का कोई लाभ नहीं था।

पिंजड़ा खुला। वीर नाहरसिंह उसी शांति के साथ बाहर निकला, जिसके साथ अंदर घुसा था। बादशाह अपने हाथों से उसकी कड़ी भुजाओं को पकड़ कर हिलाने लगा। पूछा बादशाह ने, "ऐ साहसी वीर! तेरे लड़के भी इतने ही साहसी और मजबूत होंगे; कितने बच्चे हैं तुम्हारे ?"

"बच्चे ?" नाहरसिंह ने मुस्करा कर उत्तर दिया—"बच्चे कैसे होते हैं जहांपनाह ?

"मैं शादी के बाद ही पठानों से युद्ध करने चला गया था !" "तो शादी के बाद ही ?" बादशाह ने ताज्जुब से पूछा।

"हां राजपूतों को यही शिक्षा मिलती है कि स्त्री और कुटुंब का खयाल रणक्षेत्र के रास्ते में दीवार न बने ! नाहरसिंह ने सरलता के साथ जवाब दिया।

"शाबाश, जसवंतसिंह के शेर !

शाबाश, आज से जसवंतसिंह औरंगजेब का नाहर खां होगा। सभी उसे सरदार नाहरखां कहकर उसकी इज्जत करेंगे।" बादशाह ने कहा।

जसवंतसिंह के शेर ने वस्त्र पहने और बादशाह को सलाम किया। बादशाह के हुक्म से सभी दर्शक एक ही कतार में खड़े हुए। वे एक एक करके झुक-झुक कर सरदार नाहरसिंह को सलाम करने लगे। उन लोगों में वे लोग भी थे, जो नाहरसिंह की बहादुरी देखने के बहाने उसकी बोटियां शेर के जबड़ों से चाबी जाती हुई देखना चाहते थे। वे मन ही मन यह बात सोचकर पछता रहे थे कि उनकी इस खटपट ने उनके ईर्ष्या के पात्र नाहरसिंह की टोपी में एक और चांद लगवा दिया, पर जिस समय वह बहादुर जवान उनके सामने से निकला तो उनको भी झुक कर सलाम करना पड़ा और जबान से कहना पड़ा:—

सलाम ! सरदार नाहरखां।

★★

संसार में बहुत-सी प्रतिभा का विनाश ज़रा से साहस के अभाव से हो जाता है। बहुत से लोग जीवन में केवल इसलिए असफल रह जाते हैं, क्योंकि उनमें एक बार प्रयत्न करने का साहस नहीं होता।

—सिडनी स्मिथ

आप 'जन ज्ञान' की सहायता इस तरह भी कर सकते हैं

१. जब भी आप को चन्दा समाप्ति की सूचना मिले, आप अपना शुल्क तुरन्त भेज दें।

२. वी. पी. पी. की प्रतीक्षा न करें। वी. पी. पी. में आपको १) अधिक देना पड़ता है जो न हमें मिलता है न आपको। इसलिए धन मनिआर्डर से ही भेजें।

३. यदि किसी कारणवश आप सदस्य न रहना चाहें तो हमें सूचित तो कर ही सकते हैं। आपके १० पैसे का कार्ड हमारे धन और समय की रक्षा कर सकता है।

४. मनीआर्डर के कूपन पर अपना पूरा नाम और पता अवश्य लिखें। सदस्य संख्या या "नया सदस्य" शब्द भी लिख दें।

५. 'जन ज्ञान' आप का अपना पत्र है। इसमें जो भी कमी नजर आए वह हमें बताएं। हम आपके बल पर इसके द्वारा संसार में आर्य समाज का संदेश फैलाना चाहते हैं। आपका सहयोग ही हमारी शक्ति है।—**व्यवस्थापक**

विदेशों में वैदिक विचारधारा फैलाने के लिए

संसार के

पुस्तकालयों में अधिक से अधिक

अंग्रेजी

सत्यार्थ प्रकाश

भेंट में भिजवाइए

बढ़िया कपड़े की जिल्द का एक सत्यार्थ प्रकाश
भेजने पर लगभग २०) व्यय होता है।

आप हमें २०) भेज दें या हम से पता मँगा कर

स्वयं भेजें : पर भेजें अवश्य

अमरीका, इंगलैंड, जर्मनी और जापान के
पुस्तकालयों में भेजिए

हमारी इच्छा कम से कम ५०० पुस्तकालयों में पहुंचाने की है। क्या यह पूरी न होगी ?

विनीत
—भारतेन्द्रनाथ

—स्व० गंगाप्रसाद उपाध्याय

आर्य्यसमाज की विचारधारा

१—संस्कृति

प्रश्न—संस्कृति किसे कहते हैं और वह किस तरह उत्पन्न होती है ?

उत्तर—संस्कृति मानवीय विचारों, भावों तथा कर्मों का एक ढांचा है, जिससे मनुष्य की संवृद्धि होती है। संस्कृति की नींव उच्च विचारों पर आधारित है और यह निरन्तर उपदेश से जीवित रहती है।

प्रश्न—संस्कृति और सभ्यता में क्या भेद है और उनका आपस में क्या सम्बन्ध है ?

उत्तर—संस्कृति सभ्यता की अपेक्षा विशालाशय शब्द है। सभ्यता शब्द सभा से बना है। किसी 'मनुष्य-वर्ग की कार्य-प्रणाली को सभ्यता कहते हैं। यदि कार्य-प्रणाली मानवी संवृद्धि के अनुकूल है तो यह संस्कृति के अनुकूल है, अन्यथा नहीं।

प्रश्न—क्या किसी देश की कई एक संस्कृतियां और सभ्यतायें हो सकती हैं ?

उत्तर—हो तो सकती हैं। परन्तु वे देश की उन्नति में बाधक हुए बिना नहीं रह सकतीं।

प्रश्न—क्या प्रत्येक देश की संस्कृति अपनी-अपनी होती है या कई भिन्न-भिन्न देशों की एक संस्कृति भी हो सकती है ?

उत्तर—दोनों अवस्थायें संभव हैं।

प्रश्न—किसी भी देश की संस्कृति बदल सकती है या नहीं ?

उत्तर—बदल सकती है ।

प्रश्न—अगर नहीं बदल सकती तो इसकी रक्षा का क्या अर्थ और यदि बदल जाती है तो बदली हुई अपनाने में क्या आपत्ति ?

उत्तर—बदलने का अर्थ अच्छा और बुरा दोनों हो सकते हैं। अच्छी चीज के अपनाने में कोई आपत्ति नहीं। रक्षा का अर्थ केवल इतना है कि दशा निकृष्ट न हो जाय ।

प्रश्न—हमें अपनी प्राचीन संस्कृति को अपनाने पर बल देने की क्या आवश्यकता है ?

उत्तर—हमारी प्राचीन संस्कृति में बहुत-सी ऐसी अच्छी बातें हैं जिनके बिना मनुष्य की उन्नति में बाधा आती है और आ गई है। हम उन अच्छी बातों को फिर ग्रहण करना चाहते हैं।

प्रश्न—क्या एक संस्कृति को अपनी या पराई के आधार पर अपनाने या छोड़ने का सिद्धान्त ठीक है या अच्छी और बुरी के आधार पर ?

उत्तर—अच्छी या बुरी के आधार पर ।

प्रश्न—यदि अच्छी या बुरी के आधार पर किसी संस्कृति को स्वीकार करना हो तो इस सिद्धान्त का प्रबल प्रचार होने से संसार भर की एक संस्कृति का होना असम्भव है ।

उत्तर—'संसार भर' से आप का क्या आशय है ? यदि 'संसार भर' से आपका आशय यह है कि एक भी पुरुष शेष न रहे तो यह बात अवश्य ही असम्भव है। परन्तु ऐसा अर्थ नहीं लेना चाहिए। कल्याण इसी में है कि अधिकतर मनुष्य किसी अच्छी बात पर सहमत हो जायें। अपवादों को जाने दीजिए । यदि इस सिद्धान्त को स्वीकार न किया जाय तो परिणाम बहुत बुरे होंगे । पक्षपात, घृणा और कलह बढ़ेंगे ।

प्रश्न—संसार भर में किस देश की संस्कृति सबसे उत्तम और विश्व का कल्याण करने वाली है ?

उत्तर—यह प्रश्न कठिन है। प्राचीन भारत की वैदिक संस्कृति में यह गुण था। परन्तु आजकल के भारत की सभ्यता में बहुत-सी बुराइयाँ हैं जिनके कारण भारत की उन्नति रुकी हुई है ।

प्रश्न—क्या यह संस्कृति जिसके प्रभाव से युधिष्ठिर ने अपनी भावज द्रौपदी को दांव पर लगाया, वाममार्गियों ने पर-स्त्री-गमन, मांस-मदिरा और

भ्रष्टाचार को भी धर्म बताया, मन्दिरों में देवदासियों की प्रथा को जारी किया और शूद्रों के कान में वेद-वचन पड़ने पर सीसा पिघलवाया, भारत की संस्कृति नहीं ? क्या आप इसी संस्कृति के बल-बूते पर दूसरी संस्कृतियों का सामना करने की शेखी बघारते हैं या वह कोई अन्य संस्कृति है ?

उत्तर—यह संस्कृति नहीं, अपितु संस्कृतिरूपी शरीर में फोड़े-फुन्सियों के समान है। घायल या रुग्ण शरीर पर शेखी बघारना अर्थशून्य है। वैदिक संस्कृति के विषय में विशेष अध्ययन के लिए वैदिक साहित्य पढ़ें।

प्रश्न—यदि वह संस्कृति कोई और है तो उसका आधार क्या है और उस संस्कृति ने इतिहास में क्या परिणाम उत्पन्न किये हैं ? 'परम्परा से आने वाले संस्कारों का नाम ही 'संस्कृति' है। हमारी परम्परा का आधार 'वेद' हैं। अतः वैदिक संस्कृति ही हमारी वास्तविक, अपितु संसार की वास्तविक संस्कृति है' इस सम्बन्ध में क्या विचार है।

उत्तर—केवल परम्परा का नाम संस्कृति नहीं है। संस्कृति का अर्थ ऊपर दिया जा चुका है। वैदिक संस्कृति शुद्ध रूप में किसी युग में संसार भर में प्रचलित थी। जैसे शुद्ध दूध सड़कर हानिप्रद होता है, उसी प्रकार यह संस्कृति भी बिगड़ गई। इसको संस्कृति नहीं कहना चाहिए।

२—धर्म

प्रश्न—धर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—'धर्म' शब्द के कई अर्थ हैं। बहुधा धर्म शब्द का प्रयोग करते समय लोग इन अर्थों में झमेला उत्पन्न कर देते हैं। इससे सत्य के निर्णय में बाधा पड़ जाती है। साधारण अर्थ में धर्म उन विचारों, भावों और कर्मों का सामूहिक नाम है जिनके द्वारा मनुष्य अपने वर्तमान जीवन में ऐसी उन्नति कर सके जिससे उसका भावी का जीवन भी अधिक उत्कृष्ट बन सके। (देखो कणाद मुनि का बनाया वैशेषिक दर्शन, सूत्र २—'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयस सिद्धिः स धर्मः)

प्रश्न—मजहब और धर्म एक ही चीज है या दो भिन्न-भिन्न चीजें ?

उत्तर—प्रायः ये दोनों शब्द एक ही अर्थ के द्योतक समझे जाते हैं।

अंग्रेज़ी का शब्द रिलीजन (Religion) जिस अर्थ में प्रयुक्त होता है उसी में धर्म और मजहब दोनों का प्रयोग होता है। संस्कृत शब्द धर्म के कई अर्थ हैं जैसे—

(१) आस्तिकता (जैसे "चोदनालक्षणार्थो धर्मः" जैमिनि की पूर्व-मीमांसा)।

(२) सदाचार (जैसे मनु का "दशकं धर्मलक्षणम्")।

(३) दान (जैसे धर्माध्यक्ष, धर्मार्थ, धर्मशाला)।

(४) स्त्रियों का ऋतुकाल (मासिक धर्म)।

(५) मजहब (जैसे धर्म-मन्दिर)।

जहाँ जैसा प्रसंग हो वहाँ वैसा ही समझना चाहिये। यदि प्रसंग के बाहर चले गये तो बड़ी गड़बड़ मच जायगी।

प्रश्न—मज़हब और धर्म में कौन-सी बातें एक सी हैं और किन-किन में भेद है?

उत्तर—पारिभाषिक अर्थ में दोनों शब्द समान हैं। व्युत्पत्ति अपेक्षा से धर्म जीवन की वह रीति है जिससे इस जीवन में ऐसी उन्नति प्राप्त हो, जिससे आने वाले जीवन में सहायता मिले। मज़हब जीवन बिताने की एक रीति है। ऐसा विश्वास कि मनुष्य से भी बड़ी कोई शक्ति है और इस विश्वास से प्रेरित जितने मानसिक, वाचिक या शारीरिक कर्म हैं उन सबकी गणना धर्म या मजहब में होती है। यदि वह विश्वास सच्चा है तो उसकी प्रेरणा से मनुष्य जो कुछ करेगा उसको सच्चा धर्म या सच्चा मज़हब कहेंगे। यदि वह विश्वास मिथ्या है तो धर्म या मज़हब भी मिथ्या होगा। हर मज़हब वाले अपने मज़हब को सच्चा और दूसरे के मजहब को झूठा बताते हैं। इस आधार पर मज़हब और धर्म में भेद करना कठिन है।

प्रश्न—मज़हब और राजनीति अथवा धर्म और राजनीति में कोई सम्बन्ध है या नहीं? यदि है तो क्या और यदि नहीं तो क्यों?

उत्तर—इस प्रश्न में धर्म और मज़हब एक ही अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। अतः प्रश्न दो नहीं, एक ही है। धर्म में हमारे जीवन के समस्त विभाग सम्मिलित हैं—आध्यात्मिक, शारीरिक, आर्थिक इत्यादि। इसमें कोई छूटा नहीं है। राजनीति जीवन का एक विशेष विभाग है जो देश के शासन से

सम्बद्ध हैं। धर्म के अन्तर्गत राजनीति भी आ जाती है। राजनीति धर्म के प्रतिकूल भी हो सकती है और अनुकूल भी। कुछ लोग राजनीति को धर्म की अपेक्षा अधिक व्यापक समझते हैं। उनके विचार में धर्म राजनीति का एक अङ्ग है। यह दृष्टिकोण का भेद है। मेरी सम्मति में राजनीति धर्म का एक अङ्ग है। वह धर्म के अनुकूल होनी चाहिये। बहुधा धर्म का अर्थ आध्यात्मिकता समझा जाता है। यदि यह ठीक है तो राजनैतिक प्रश्नों का समाधान करने में इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि आध्यात्मिक प्रश्न दृष्टि से ओझल न हो जाय। यत: शासन का सम्बन्ध मनुष्य से है और मनुष्य एक आत्मिक सत्ता है अत: शासन में भी इस बात का ध्यान रखना चाहिये। वह राजनीति जो अध्यात्म का विचार नहीं करती, दूषित है। परन्तु इस सम्बन्ध में बहुत-से लोग धर्म से ऊपरी बातों का अर्थ ले लेते हैं और चाहते हैं कि राजनीति इस बात का भी निश्चय कर दे कि हम पूजा किस प्रकार करें और किस प्रकार न करें। इसका परिणाम बुरा होता है। मज़हबी ढकोसलों से इस प्रश्न का कोई सम्बन्ध नहीं है। आजकल भारतीय शासन सैक्यूलर है। अर्थात् उसमें किसी विशेष मजहब के साथ पक्षपात नहीं है। इस आधार पर बहुधा लोग इस शासन पर कटाक्ष करते हैं। शासन तो सैक्यूलर होना चाहिये अर्थात् आध्यात्मिक बातों में मनुष्य को स्वतन्त्रता हो और किसी को अपने आत्मा के विरुद्ध किसी विशेष धर्म का अवलम्बन करने के लिए बाधित न किया जाय।

प्रश्न—धर्म का सम्बन्ध शरीर से है, आत्मा से या दोनों से ?

उत्तर—दोनों से। शरीर तो उसी समय तक शरीर है जब तक उसमें आत्मा है। आत्मा के निकल जाने पर तो शरीर शरीर नहीं कहलाता, उसको लाश कहते हैं।

प्रश्न - क्या धर्म हमारी पारलौकिक उन्नति का ही कारण है ? लौकिक उन्नति का नहीं।

उत्तर—कोई परलोक इस लोक के बिना नहीं हो सकता। इसलिये धर्म दोनों लोकों की उन्नति का साधन है। परन्तु एक बात नहीं भूलनी चाहिए। धर्म के अन्तर्गत तो सैकड़ों काम हैं। उनमें से कुछ का साक्षात् सम्बन्ध इस लोक से है और कुछ का परलोक से भी। कुछ का परलोक से दूर

का सम्बन्ध है, जैसे प्रात:कल उठकर मुंह धोना यह धर्म है। परन्तु इसका साक्षात् सम्बन्ध आज जीवन से है। दूरस्थ सम्बन्ध तो दूसरे जन्म से भी सिद्ध किया जा सकता है।

३—राजनीति

प्रश्न—यदि धर्म हमारी शरीर सम्बन्धी आवश्यकताओं को भी पूरा कर सकता है और इस लोक की उन्नति का भी कारण है तो क्या राज्यधर्म या राजनीति धर्म का ही एक अंग नहीं ? क्योंकि राजनीति का मुख्य उद्देश्य भी इस लोक की समस्याओं का समाधान और शरीर सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरा करना ही है। फिर इस विचार का क्या मूल्य है कि एक धार्मिक संस्था होने के नाते आर्यसमाज को राजनीति में भाग नहीं लेना चाहिए ?

उत्तर—ऊपर कहा जा चुका है कि राजनीति धर्म का एक अंग है और होनी चाहिए। राजनीति इस लोक की उन्नति का एक भाग है, कुल (सर्वस्व) नहीं। धर्म कुल है। राजनीति शरीर सम्बन्धी एक विशेष भाग से सम्बन्ध रखती है। शरीर सम्बन्धी जीवन के भी कई भाग हैं। इन्हें अलग-अलग रखना आवश्यक है। अन्यथा गड़बड़ मच जाने का भय है। व्यापार एक विभाग है, उपासना दूसरा विभाग है, राजनीति तीसरा, अर्थ चौथा, इत्यादि। यदि इन सब विभागों को एक-दूसरे के साथ मिला दिया जाय तो भयंकर गड़बड़ हो जायगी। आर्यसमाज के साथ राजनीति का नाता जोड़ने के विषय में जो प्रश्न किया जाता है उसका आधार एक बहुत बड़ी भ्रान्ति है। लोग समझते हैं कि हर संस्था से हर काम लिया जा सकता है। धर्म और धार्मिक संस्था में भेद है। इसी प्रकार राजनीति और राजनैतिक संस्था में भेद है। धर्म का अङ्ग है राजनीति। परन्तु राजनैतिक संस्थायें धार्मिक संस्थाओं का अंग नहीं हैं। जो लोग इस सूक्ष्म भेद को नहीं समझते या समझते हुए अनजान बनते हैं वे अपने और देश के साथ अन्याय करते हैं।

प्रश्न—इसें और स्पष्ट कीजिये।

उत्तर– ऊपर कहा जा चुका है कि (१) राजनीति धर्म का अंग है। (२) राजनैतिक संस्थाएँ धार्मिक संस्थाओं का अंग नहीं हैं। क्यों ? इसलिए

कि प्रत्येक संस्था एक मुख्य उद्देश्य को लेकर बनती है और उससे आगे नहीं जा सकती। यह वैधानिक प्रश्न है। इसके उल्लंघन से समस्त कार्य अस्त-व्यस्त हो सकता है। आर्यसमाज का उद्देश्य है वैदिकधर्म का प्रचार करना। उस वैदिकधर्म का जिसका सम्बन्ध विश्वभर से है। कोई स्थानिक समाज स्वयं स्वतन्त्र संस्था नहीं है। विश्वभर के समाज एक ही बड़ी संस्था के अंग हैं। अतः उनको किसी ऐसे आन्दोलन में न पड़ना चाहिए जिसमें परस्पर विरोध आता हो। राजनैतिक संस्था की परिभाषा यह है कि उसका उद्देश्य किसी देश विशेष के शासन में हस्तक्षेप करना और उसमें परिवर्तन करना हो। वह चाहे शान्तिमय चुनाव के द्वारा हो चाहे विद्रोह आदि कड़े साधनों द्वारा। प्रत्येक देश की राजनीति अलग और विरुद्ध भी हो सकती है। परन्तु उन सब देशों के समाजों की नीति तो एक ही होगी। कल्पना कीजिये कि 'अ' और 'ब' दो देशों में आर्यसमाज हैं और उन देशों की राजनीति में विरोध आ गया। तो राजनैतिक विरोधात्मक आन्दोलनों के कारण समाज भी एक-दूसरे के विरुद्ध हो जायेंगे। इससे तो बड़ी क्षति होगी। दूसरी और बात सोचिए। एक देश में अनेक धर्म और धार्मिक संस्थायें होंगी। यदि प्रत्येक धार्मिक संस्था अलग-अलग उम्मीदवार खड़े करे तो देश की राजनीति साम्प्रदायिक होकर जितने धर्म हैं उतने ही राजनैतिक दल उठ खड़े होंगे। इससे देश की राजनीति का ढांचा ही तितर-बितर हो जायगा।

प्रश्न—तो क्या आर्यों को राजनीति में भाग नहीं लेना चाहिए ?

उत्तर—अवश्य लेना चाहिए। राजनीति में भाग लेना पाप नहीं है और आर्यसमाज ने कभी किसी सदस्य को राजनीति में भाग लेने से नहीं रोका। इसके प्रमुख सभासद् सदा राजनीति में भाग लेते रहे हैं। परन्तु आर्यसमाज ने स्वयं सामूहिक या वैधानिक रीति से राजनीति में भाग नहीं लिया।

प्रश्न—क्या अनोखी बात है कि एक-एक करके तो भाग ले सकते हैं और कई लोग समूह में मिलकर नहीं ?

उत्तर—आपने समझा नहीं कि संस्था और व्यक्तियों में क्या भेद है और उनके अधिकारों और कर्तव्यों में क्या भेद है। संस्थायें किसी सीमित उद्देश्य को लेकर बनाई जाती हैं। उनके कार्यक्षेत्र परिमित होते हैं। उससे

बाहर उनको नहीं जाना चाहिए। समूह और संस्था का भेद तो स्पष्ट है।

प्रश्न—स्वामीजी ने सत्यार्थप्रकाश में छठा समुल्लास क्यों लिखा ?

उत्तर—राजा और प्रजा का धर्म बताने के लिए !

प्रश्न—क्या यह राजनीति नहीं है ?

उत्तर—है।

प्रश्न—फिर आर्यसमाज के कार्यक्षेत्र में राजनीति क्यों नहीं ?

उत्तर—सत्यार्थप्रकाश का छठा समुल्लास आर्यसमाज का विधान नहीं है। न सत्यार्थप्रकाश लिखते समय ऋषि का अभिप्राय आर्यसमाज का विधान बनाने से था। उन्होंने विधान तो अलग बनाया।

प्रश्न—तो क्या यह उपदेश क्षत्रियों या राजनीतिज्ञों के लिए नहीं है ?

उत्तर—है। परन्तु उनका कार्यक्षेत्र तो अलग है। वैश्यों को उपदेश देने का यह अर्थ तो नहीं कि आर्यसमाज रुई का व्यापार करने लगे या गेहूँ की खेती करने लगे। विधान तो विधान है। आर्यसमाज के अन्तर्गत भी भिन्न-भिन्न संस्थाएँ हो सकती हैं जिनके कार्यक्षेत्र एक न हों या जिनमें वैधानिक सीमा-भेद हो।

प्रश्न—क्या आर्यसमाज राजनीति के मौलिक नियमों की शिक्षा नहीं दे सकता ?

उत्तर—दे सकता है। परन्तु मौलिक राजनीति की शिक्षा देने से ही वह राजनैतिक संस्था नहीं कहा जा सकता। हम ऊपर कह चुके हैं कि राजनीति और राजनैतिक संस्था में भेद है। हर कालेज में राजनीति का कोर्स पढ़ाया जाता है। परन्तु वे कालेज राजनैतिक संस्थाएँ नहीं कहे जा सकते।

प्रश्न—राजनैतिक संस्था की क्या परिभाषा है ?

उत्तर—राजनैतिक संस्था वह है जो किसी देश विशेष के वर्तमान शासन में हस्तक्षेप करे और उसमें परिवर्तन करने का यत्न करे। चुनाव लड़ना या विद्रोह करना उसका मुख्य कार्य होता है। राजनीति के अध्ययन-मात्र से कोई संस्था राजनैतिक संस्था नहीं हो सकती।

प्रश्न—तो आर्यसमाज ने हैदराबाद सत्याग्रह में क्यों भाग लिया ?

उत्तर—वहाँ के वर्तमान शासन में हस्तक्षेप करने के हेतु नहीं, अपितु अपने सांस्कृतिक अधिकारों को सुरक्षित करने और रियासत के कर्मचारियों

के अत्याचारों से अपने को सुरक्षित रखने के लिए। इतना काम तो सरकारी नौकर भी कर सकते हैं।

प्रश्न—क्या आर्यसमाज के प्रमुख नेता राजनीति में भाग ले सकते हैं? जैसे चुनाव के लिए खड़े होना या आन्दोलन करना।

उत्तर—अवश्य। उनको पूरी स्वतन्त्रता है। परन्तु उनको इतना ध्यान रखना चाहिए कि जिस समाज के वे सदस्य हैं उस समाज को उनके पीछे खिचना न पड़े। क्योंकि उस समाज में ऐसे सभासद् भी हो सकते हैं जो राजनैतिक बातों में उनसे मतभेद रखते हों और उनसे युद्ध छिड़ जाय। यदि ऐसा अवसर आ जाय तो उस युद्ध का क्षेत्र समाज की सीमा से सर्वथा बाहर होना चाहिए।

प्रश्न—यह तो कठिन बात है?

उत्तर—कठिन तो है। परन्तु आवश्यक है। फिर असम्भव नहीं। देखो आर्यसमाज का १०वां नियम। यदि आर्यसमाज को प्रत्येक देश की वर्तमान राजनीति में घसीटा गया तो आर्यसमाज का कार्यक्षेत्र बड़ा संकुचित हो जायगा और आर्यसमाज संसार भर की संस्था न रह सकेगी।

प्रश्न—आर्यसमाज 'राजार्य सभा' क्यों नहीं खोलता? स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के छठे समुल्लास में स्पष्ट लिखा है कि तीन सभाएँ होनी चाहिएँ—राजार्य सभा, विद्यार्य सभा और धर्मार्य सभा।

उत्तर—ये तीन सभाएँ तो किसी राज्य का अंग होनी चाहिएँ और प्रत्येक राज्य में ऐसी सभाएँ होती हैं। वर्तमान भारतीय शासन में भी ये तीनों सभाएँ किसी-न-किसी रूप में हैं। स्वामी जी ने यह कहीं नहीं लिखा कि आर्यसमाज के अन्तर्गत अवश्य ही ये तीन सभाएँ हों। हम ऊपर कह चुके हैं कि छठा समुल्लास आर्यसमाज का विधान नहीं और न इस प्रयोजन से लिखा गया है।

प्रश्न—क्या आपने सत्यार्थप्रकाश का छठा समुल्लास पढ़ा है?

उत्तर—पढ़ा तो कई बार है। आप भी पढ़कर देख लीजिये और आपको पता लग जायगा कि ऋषि का अभिप्राय क्या है।

प्रश्न—'आर्यसमाज को सामूहिक रूप में राजनीति में भाग नहीं लेना चाहिए' यह बात वर्तमान अवस्था को देखकर कही जाती है या सिद्धान्त रूप में।

उत्तर—सिद्धान्त रूप में। ऊपर स्पष्ट हो चुका है।

४—सनातन धर्म

प्रश्न—धर्म एक है वा अनेक ?

उत्तर—यदि धर्म का अर्थ सत्यता है तो धर्म एक है। यदि भिन्न-भिन्न रूढ़ियों का नाम धर्म है तो धर्म अनेक हैं। धर्म शब्द का प्रयोग करने वाले जिस अर्थ में धर्म शब्द को लेंगे उसी के अनुकूल उत्तर होगा। अर्थ न समझने से गड़बड़झाला हो जाता है।

प्रश्न—यदि धर्म एक है तो धर्म शब्द के साथ अन्य शब्दों का प्रयोग क्यों किया जाता है ? वैदिक धर्म, सनातन धर्म और हिन्दू धर्म का क्या अर्थ है और उनमें आपस में क्या भेद है ?

उत्तर—ऊपर का उत्तर पढ़िये। वैदिक धर्म और सनातन धर्म के शाब्दिक अर्थ तो एक ही हैं। लेकिन जिसे आजकल सनातन धर्म कहते हैं, वह वैदिक धर्म का एक बिगड़ा हुआ रूप है। यह सनातन भी नहीं है, क्योंकि इसमें बहुत-सी नई बातें शामिल हो गई हैं और इसका सनातन रूप नष्ट हो चुका है। 'हिन्दू धर्म' तो एक अर्थ-शून्य शब्द है। इसमें विचारों और रूढ़ियों की खिचड़ी है।

प्रश्न—क्या आर्यसमाज और कई आर्यसमाजियों का यह दावा कि आर्यसमाज विश्वास प्रधान नहीं, अपितु ज्ञान और कर्म प्रधान संस्था है, असत्य नहीं ? क्योंकि इसका सदस्य बनने वाले हर व्यक्ति के लिए इस विश्वास का पहले से होना आवश्यक है कि ईश्वर है, उसके अमुक-अमुक विशेषण हैं और विशेषकर यह कि वेद ही सत्य धर्म की पुस्तक है। कोई व्यक्ति पहले पूरा वेद पढ़कर और इस बात का निश्चय करके कि सचमुच वेद उपर्युक्त गुणों से सम्पन्न है, इसका सदस्य नहीं बनता ?

उत्तर—विश्वास प्रधान वह मजहब है जो विश्वास को मुख्य पदवी देता है और कर्म तथा ज्ञान को उसके नीचे रखता है। इसके विरुद्ध आर्यसमाज तो बुद्धि और ज्ञान की नींव पर विश्वास की स्थापना करता है। वह विश्वास के विरुद्ध नहीं, अपितु ज्ञान-शून्य और बुद्धि-शून्य विश्वास के विरुद्ध है। "जो चीज बुद्धि के विरुद्ध हो उसे नहीं मानना चाहिए" यह है आर्यसमाज का दावा। हर समाज या सोसायटी के मंतव्य परिमित और परिगणित होने

चाहिएँ, अन्यथा उसके सभासदों में ऐक्य के अभाव के कारण कर्म भी अलग-अलग होंगे और समाज का संगठन टूट जायगा। आर्यसमाज के दस नियम हैं। जिस व्यक्ति की बुद्धि कहती है कि ये नियम असत्य हैं उसे समाज का सदस्य नहीं होना चाहिए। आर्यसमाज यह नहीं कहता कि मान लो। हाँ, यदि जाँचने से ठीक मालूम पड़े तो सदस्य बन जाओ। यदि पीछे से ज्ञान हो जाय कि ये नियम असत्य हैं और बुद्धि की कसौटी पर नहीं परखे जा सकते तो आर्यसमाज को छोड़ दो। यह ठीक है कि कोई व्यक्ति पूर्ण रूप से वेद नहीं पढ़ सकता, परन्तु खिचड़ी के एक चावल की भाँति परख तो कर ही सकता है। आगे उसकी बुद्धि उसकी सहायता करेगी। जो ऐसा नहीं करता वह यथार्थ में आर्यसमाजी नहीं, क्योंकि आर्यसमाज का नियम है कि सत्य के ग्रहण करने और असत्य के त्यागने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए। परन्तु ऐसा तो वही करेगा जो विश्वास को बुद्धि के नीचे रखे। सत्य का खोजी होना इस बात का प्रमाण है कि विश्वास का पद बुद्धि से पीछे है, पहले नहीं। ईश्वर, उसके गुण और वेद तीनों पर विश्वास रखने के लिए आवश्यक है कि ज्ञान और बुद्धि से काम लिया जाय। किसी चीज को बिना परखे नहीं मान लेना चाहिए।

प्रश्न--क्या आर्यसमाज के नियम और विधान इसके प्रवर्तक के बनाये हुए हैं या पीछे से सदस्यों ने बनाये हैं ?

उत्तर—नियम तो प्रवर्तक ने ही बनाये थे। विधान में सदस्यों का भी पर्याप्त हाथ है।

प्रश्न—क्या आर्यसमाज के नियम और विधान दोनों में या इनमें से किसी एक में भी किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हो सकता। अगर नहीं तो क्यों नहीं और हो सकता है तो क्यों और कैसे ?

उत्तर—परिवर्तन हो सकना असम्भव नहीं, परन्तु नियमों को बदलना कभी उचित नहीं समझा गया। अन्यथा आर्यसमाज की रूपरेखा ही कुछ की कुछ हो सकती है। नियम हैं भी विश्वव्यापी। विधान में परिवर्तन हुआ है और हो सकता है—सब आर्यसमाजों की सम्मति से।

प्रश्न—क्या यह असत्य है कि वर्तमान भारतीय राज्य विधान महर्षि दयानन्द के बनाये विधान के अनुकूल नहीं है ?

उत्तर—महर्षि दयानन्द ने भारतवर्ष या किसी देश विशेष की वर्तमान परिस्थिति को देख कर विधान नहीं बनाया। वह बना भी नहीं सकते थे,

क्योंकि विधान तो परिस्थिति को देख कर ही बनाया जाता है। भिन्न-भिन्न देशों की भिन्न-भिन्न कालों में भिन्न-भिन्न परिस्थितियां होती हैं। इसलिए यह प्रश्न ही निरर्थक है। महर्षि दयानन्द ने अपने ग्रन्थों में कुछ मौलिक बातें दी हैं। उनका किसी विधान से सम्बन्ध नहीं।

प्रश्न—स्वामी दयानन्द वर्तमान प्रचलित डैमोक्रेसी (जनतंत्र) के पोषक थे या डिक्टेटरशिप (सर्वाधिकारित्व) के या डैमोक्रेसी और डिक्टेटरशिप के बीच की किसी स्थिति के। आर्यसमाज के प्रवर्तक जिस प्रकार के राज्य विधान के पोषक थे उसे क्या नाम दिया जा सकता है और उसकी क्रियात्मक रूपरेखा कैसी हो सकती है ?

उत्तर—यह कहना कठिन है कि में भारतवर्ष के लिए स्वामी दयानन्द क्या विधान प्रस्तुत करते। हर देश का शासन उस देश के लोगों की बुद्धि और ज्ञान के स्तर पर निर्भर है। जैसे छोटे बच्चों के स्कूलों में डैमोक्रेसी बिल्कुल नहीं चल सकती और कालिजों में केवल अंशत: चल सकती है। इसी प्रकार राज्यों की भी दशा है। छोटे नगर राज्यों में (जैसे प्राचीन एथन्स नगर में) प्रत्येक नागरिक स्वयं सीधा मत देता था। बड़े देशों में प्रतिनिधि द्वारा। यही देशों की व्यवस्था है। स्वामी जी ने अपने ग्रन्थों में केवल एक बात पर बल दिया है अर्थात् देश के निवासियों को योग्यता के अनुसार अपने देश के शासन में अवश्य भाग लेना चाहिये। परन्तु योग्यता की जांच तो करनी पड़ेगी। स्वामीजी की शिक्षा समस्त संसार के लिये है ? संसार के भिन्न-भिन्न देशों की अवस्थायें भिन्न-भिन्न हैं। इसलिये एक ही विधान सब के लिए ठीक न होगा।

प्रश्न—वेद में किस प्रकार के राज्य-विधान का वर्णन है। एक ही या भिन्न-भिन्न प्रकार का। यदि भिन्न-भिन्न प्रकार का तो किन-किन अवस्थाओं में किस-किस विधान की आवश्यकता है और इन में से कौन-सा विधान सर्वोत्कृष्ट माना गया है ?

उत्तर—इसका उत्तर ऊपर आ गया है। जो विधान लोगों की योग्यता को देख कर बनाया जायगा वह सब से श्रेष्ठ होगा। क्योंकि उन्हीं की उन्नति के लिए तो वह विधान है। जो विधान इस बात पर दृष्टि न रक्खेगा वह व्यवहार्य न होगा और न उससे कुछ लाभ होगा—चाहे वह देखने में कितना ही बढ़िया क्यों न हो।

प्रश्न—क्या आर्य्यसमाज का एक नेता नहीं हो सकता ?

उत्तर—हो सकता है, यदि आर्य्यसमाज इस बात को मान ले और उस में नेता होने की योग्यता हो। परन्तु नेता का अर्थ डिक्टेटर (सर्वाधिकारी) तो है नहीं।

प्रश्न—आर्यसमाज का नेता ब्राह्मण होना चाहिये या कोई धर्म-परायण, साहसी, वीर, गम्भीर, प्रभावशाली, व्यवहारकुशल, बुद्धिमान् और ब्राह्मणवत् विद्वान् क्षत्रिय जो अपने भीतर धार्मिक योग्यता के अतिरिक्त प्रबन्ध की भी विशेषता रखता हो ?

उत्तर—दूसरी प्रकार का, उसे आप ब्राह्मण भी कह सकते हैं।

प्रश्न—क्या आर्य्यसमाज अपने प्रवर्तक के विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेता है और कोई आर्य्यसमाजी स्वामी जी के विचारों से मतभेद नहीं रख सकता ?

उत्तर—मुख्य बातों में उत्तरदायित्व लेता है। गौण बातों में मतभेद हो सकता है।

प्रश्न—क्या आर्य समाज अपने प्रवर्तक द्वारा की हुई अन्य मतों के सम्बन्ध में कड़ी आलोचना को अक्षरशः सत्य मानता है।

उत्तर—यह आवश्यक नहीं और न ऐसा कोई नियम है।

प्रश्न—आर्यसमाज सबका कल्याण चाहता है, परन्तु गैर-आर्यसमाजी राजनैतिक तथा धार्मिक संस्थायें प्रायः उसे अपना सबसे बड़ा शत्रु समझती हैं। ऐसा क्यों ? उनका यह भय कहाँ तक सुसंगत है ?

उत्तर—आर्यसमाज के नियम तो सब के कल्याण के लिए हैं। अन्य संस्थायें कुछ अपने संकुचित उद्देश्य भी रखती हैं, इसलिये वे आर्यसमाज को शत्रु समझ लेती हैं। कभी-कभी आर्यसमाज के लोग भी भूल कर बैठते हैं और वे संकुचित विचारों में फंस जाते हैं। इसलिए अन्य लोगों को उनसे डर लगता है। भूलें दोनों ओर से हो रही हैं, एक ओर से नहीं। मनुष्य तो अल्पज्ञ ही ठहरा।

प्रश्न—यदि संसार का कल्याण करना ही आर्यसमाज का उद्देश्य है तो क्या हर उस पग का जिससे संसार का अहित और अकल्याण होता हो, समूह रूप में बलपूर्वक विरोध करना उसका कर्तव्य नहीं—चाहे वह पग किसी भी व्यक्ति, संस्था या राजसत्ता की ओर से क्यों न बढ़ाया गया हो और क्या उसे राष्ट्र और संसार की राजनीति को ठीक रखना उचित नहीं, जिससे ग़लत

राजनीति से राष्ट्र और संसार को जो हानि पहुंच रही है उससे उसे बचाया जाय।

उत्तर—इसका औचित्य और अनौचित्य समाज की बुद्धि, ज्ञान और शक्ति के अनुपात पर निर्भर है। यह कहना कठिन है कि कौन-सी बात ग़लत है और कौन-सी ठीक। आर्यसमाज में भी लोग कई बार स्वार्थ से किसी चीज़ को ग़लत या ठीक कह देते हैं। आर्यसमाज की इतनी शक्ति भी नहीं कि संसार भर की राजनीति का मुक़ाबिला कर सके और न उसका ज्ञान ही इतना विशाल है कि संसार भर की राजनीति को समझ सके। डींगें मारना और बात है, लेकिन डींगों से तो काम नहीं चलता। यदि हम वैदिक धर्म का प्रचार करते रहे तो वैदिक सूर्य की जितनी-जितनी ज्योति बढ़ेगी, संसार स्वयं अपनी भूलों को स्वीकार करेगा। इसलिए आर्यसमाज को अपनी पूरी शक्ति इसी ओर लगानी चाहिए।

मनोरम देव !

ओम् अग्ने कदा त आनुषग्भुवद्देवस्य चेतनम्।
अधा हि त्वा जगृभ्रिरे मर्तासो विक्ष्वीड्यम्॥

(ऋ० ४।७।२।)

मनोरम देव ! संसार तुम्हारी माया के पीछे पागल हो रहा है। पर उस माया में जो तुम्हारे सौन्दर्य की आभा है, परम ज्योति है उस से विमुख है। भागों की ओर जहां दुःख ही दुःख है, खिंचा जा रहा है, पर तुम्हारे अमृत स्रोत की ओर जहां आनन्द ही आनन्द है कोई नहीं आ रहा। आनन्द रूप ! मुझे बल दो कि मैं अकेला ही इस रस का पान कर सकूं।

भगवन् ! वह दिन कब आयेगा जब मनुष्य तेरी मोहिनी माया से हट कर आनन्द स्रोत की ओर बढ़ेंगे। तेरी गोद के लिये हाथ फैलायेंगे। वह दिन कब आयेगा जब मनुष्य मात्र आत्मना तुझ में समाहित हो कर धर्म पूर्वक बर्ताव करेंगे।

प्रकाश स्वरूप परमात्मन् ! वह दिन शीघ्र ला दो। अपनी प्रेरणा से शीघ्र अति शीघ्र ला दो।

स्वामी दयानन्द को : महर्षि दयानन्द बनाने वाले

गुरुदेव विरजानन्द

यदि विरजानन्द न बनाते तो स्वामी दयानन्द महर्षि दयानन्द न बन पाते.........यह सच है कि न ऐसा गुरु, न ऐसा शिष्य खोजने पर भी किसी को न मिलेगा ? इतिहास के पृष्ठों में दोनों की उपमा नहीं ।

वे व्याकरण के पंडित तो थे ही पर प्राचीन वैदिक परम्परा पर उनकी श्रद्धा अगाध थी । वे मन की साध मन में दबाए वर्षों से इस प्रतीक्षा में थे कि कोई ऐसी आत्मा मिले जो सोए देश को फिर से जगा सके ।

जिज्ञासु दयानन्द ने जब द्वार खटखटाया तो पहला आदेश हुआ जो कुछ भी आज तक पढ़ा है उसे भूल जाओ । फेंक आओ सारी अविद्या को यमुना में —शिष्य ने बिना संकोच सब कुछ फेंक दिया ।

साधना ने हीरे को तराश कर जगमगा दिया । सब भांति ज्ञान संपन्न हो, विद्या समाप्ति पर जब शिष्य दयानन्द विदा होने लगा तो गुरु ने कहा—

दयानन्द ! संसार वेदों को भूल चुका है, जाओ अज्ञान मिटाओ वेद ज्ञान फैलाओ ! शिष्य ने क्या कुछ किया वेद प्रचार के लिए, यह सारा संसार जानता है ।

और आज —

हम सुन रहे हैं अपने गुरु दयानन्द की गूंजती वाणी जो अपने शिष्यों से कह रही है —

वेद' को भुलाओ नहीं; वेद ही नहीं रहे तो कुछ नहीं रहेगा । आर्यो ! भटको मत, अपनी सारी शक्ति वेद ज्ञान फैलाने में लगाओ!

दयानन्द ने अपने गुरू विरजानन्द की आज्ञा मानी थी तो क्या हम अपने गुरू दयानन्द का आदेश नहीं मान सकते ?

—भारतेन्द्र नाथ

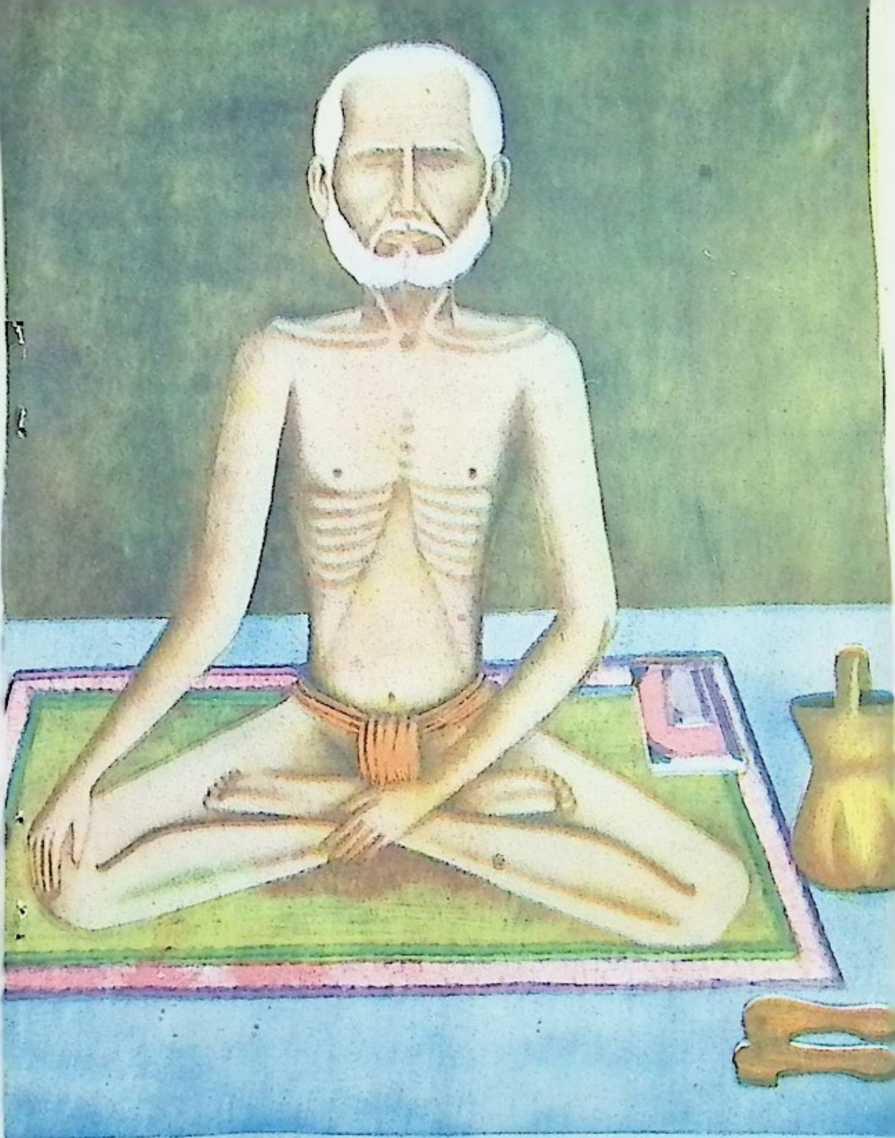

श्री गुरु विरजानन्द सरस्वती ।

कौन कहता है कि अकबर महान् था ?

कुछ भ्रान्त मस्तिष्कों ने अकबर की महत्ता के बहुत ढोल पीटे हैं, किन्तु वास्तविकता प्रकट कर रहा है यह लेख। इसे पढ़कर आप इतिहास का तथ्य समझ कह सकेंगे—कौन कहता है कि... —सम्पादक

जिस किसी ने भी सरकारी क्षेत्र में निर्मित होने वाले होटल का नाम अकबर के नाम पर रखने का सुझाव दिया है, उसने इतिहास की नितान्त अनभिज्ञता का प्रमाणमात्र ही दिया है।

'अकबर—महान् मुगल' शीर्षक वाली अकबर के शासन का आडम्बरपूर्ण व पक्षपातपूर्ण वर्णन करने वाली पुस्तक में भी पृष्ठ ३२ पर विंसेन्ट स्मिथ बिना यह उल्लेख किये नहीं रह सका कि 'कलिंग-विजय पर हुई दीनावस्था के कारण अशोक को जो मनस्ताप हुआ था, उस पर अकबर खुलकर हंसा होगा और उसने अपने पूर्ववर्ती के इस निर्णय की पूर्ण भर्त्सना की होगी कि अतिक्रमण के लिये की जाने वाली भावी लड़ाइयों से दूर रहा जाय।'

स्मिथ इस विचार को बिल्कुल "भावुकतापूर्ण निरर्थकता" कह कर तिरस्कृत कर देता है कि अकबर द्वारा विभिन्न चढ़ाइयाँ छोटे-छोटे राज्यों को मिला कर महान् साम्राज्य स्थापित करने के महान् उद्देश्य से प्रेरित हो कर की गई थीं।

समकालीन व्यक्तियों यथा अबुल फ़जल, निजामुद्दीन और बदायूनी तथा विंसेन्ट स्मिथ जैसे पश्चिमी विद्वानों द्वारा प्रस्तुत अकबर के शासन का

विवरण पाठक को इस बात की प्रतीति कराने को यथेष्ट है कि अकबर के शासनाधीन होकर दासता अपने अधमतम रूपों में चरमोत्कर्ष पर थी तथा उसका शासन-कांल इस प्रकार की नृशंसता, विधिहीनता, दमन एवं निर्ममतापूर्ण चढ़ाइयों से पूर्ण है जिनका दूसरा रूप इतिहास में अन्यत्र अत्यन्त दुर्लभ है।

अकबर के व्यक्तित्व का सही आकलन कर पाने के लिये यही उचित होगा कि उस परिवार की परम्पराओं तथा व्यवहार के स्तर का परिवेक्षण किया जाय जिससे कि अकबर का वंशानुक्रम है।

अपनी पुस्तक के पृष्ठ ७ पर विन्सेन्ट स्मिथ ने उल्लेख किया है : "अकबर भारत में एक विदेशी था। उसकी रगों में भारतीय रक्त की एक बूंद भी नहीं थी।" यह प्रदर्शित करता है कि किस प्रकार भारतीय विद्यार्थियों की पीढ़ियों को तोते की-सी रट लगवा कर तथा अपनी उत्तर-पुस्तिकाओं में यह लिखा कर सदैव धोखे में रखा गया है कि अकबर एक भारतीय था तथा उनमें भी प्रमुख ही नहीं, प्रमुखतम व्यक्ति था। जहां तक भ्रान्ति के दूसरे अंश का सम्बन्ध है कि वह एक महान् व्यक्ति तथा शासनकर्त्ता था, हम इस लेख में यह सिद्ध करना चाहते हैं कि वह तो अपने समस्त सम्बन्धियों तथा भारतीयों द्वारा सर्वाधिक घृणित व्यक्तियों में से एक था और इसीलिए भारतीय इतिहास-ग्रन्थों में उसकी गणना ऐसे ही घृणित व्यक्तियों में की जानी चाहिये।

ऊपर कहे गए शब्दों को जारी रखते हुए विन्सेन्ट स्मिथ कहता है कि अकबर अपने पितृ-पक्ष में तैमूरलंग से सीधी सातवीं पीढ़ी में था और मातृ-पक्ष में चंगेज़ खां से था। इस प्रकार अकबर इतिहास में ज्ञात उन दो नृशंसतम उपप्लवकारी वंशों से उत्पन्न हुआ था, जिनके जीवन काल में पृथ्वी त्रास से थर्राती थी। किन्तु भारतीय इतिहास-ग्रंथ हमको यह विश्वास दिलाना चाहते हैं कि अकबर एसीसी के सेंट फ्रांसिस तथा अबू बिन आदम की सन्त-परंपरा से सम्बन्ध रखता था।

अवगुण, अपराध तथा अत्याचार

विन्सेन्ट स्मिथ की पुस्तक के पृष्ठ २९४ पर कहा जाता है कि तैमूरलंग के राज-परिवार के लिए मद्यपान उसी प्रकार जन्मपाप था जैसा कि यह अन्य मुस्लिम राजघरानों की नैतिक दुर्बलता थी...बाबर गहरे पियक्कड़ स्वभाव का व्यक्ति था...हुमायूं स्वयं को अफ़ीम में धुत्त रख कर जड़ बुद्धि बना चुका

था···अकबर ने अपने आप में दोनों अवगुणों का समावेश होने दिया···अकबर के दो छोटे लड़के पुरातन मद्यपान के कारण मर गए थे और उनका बड़ा भाई उसी बीमारी से अपनी दृढ़ शारीरिक संरचना के कारण बच गया था···न कि किसी गुण के कारण।

स्मिथ कहता है कि अकबर के चाचा कामरान ने "स्वभावत: अपने शत्रुओं को क्रूरतम यातनाएँ देकर अपना मुंह काला कर लिया था···उसने बच्चों तथा महिलाओं को नृशंसतम अत्याचार का शिकार बनाया···(पृष्ठ १५)।

जैसा कि भारत के समस्त मुस्लिम शासकों के साथ सामान्य बात रही, वैसे ही हुमायूं भी अपने सम्पूर्ण जीवन अपने ही भाइयों के साथ घमासान युद्धों में व्यस्त रहा। जहां तक अत्याचारों का सम्बन्ध रहा, वह कामरान का प्रतिस्पर्धी था। पकड़ लिये जाने पर कामरान को घोर यातनाएं दी गईं। स्मिथ ने (पृष्ठ २० पर) उल्लेख किया है कि अपने भाई के कष्टों से हुमायूं को कोई दु:ख नहीं हुआ। कामरान को उसके आवास से बाहर घसीट कर लिटाया गया और जब उसके घुटनों पर एक आदमी बैठ गया, तब दो धारवाला नोकदार तेज नश्तर कामरान की आंखों में घुसेड़ दिया गया। थोड़ा-सा नींबू का रस और नमक उसकी आंखों में रगड़ा गया और उसके तुरन्त बाद पहरेदारों के साथ चलने के लिए उसको घोड़े की पीठ पर बैठा दिया गया।" उसकी पिता तथा चाचा तक चली आयी ऐसी परम्परा और स्वयं अकबर के सब सम्भव अवगुणों के प्रति असीम रूप में व्यसनी होने के कारण यह बात करना, जैसा आज के हमारे इतिहास-ग्रंथ करते हैं, केवल मात्र परले दर्जे की प्रगल्भता है कि अकबर विरले सद्-वृत्ति लोगों में से एक था।

अकबर का कुरूप व्यक्तित्व

विन्सेन्ट स्मिथ द्वारा पृष्ठ २४२ पर दी गई अकबर की शारीरिक विशिष्टताओं से स्पष्ट है कि अकबर का व्यक्तित्व कुरूप तथा भद्दा था, जैसा होना नृवंश-विज्ञान के बिल्कुल अनुरूप है क्योंकि उसका सम्बन्ध एक अत्यन्त दुर्गुणी परिवार से था। स्मिथ कहता है (जीवन के मध्यकाल में) अकबर औसत दर्जे के डील-डौल का था, ऊँचाई में लगभग ५ फुट ७ इंच, चौड़ी छाती, पतली कमर और लम्बे बाजू। उसके पैर कुछ भीतर की ओर झुके हुए थे। चलते समय वह बाएं पैर को कुछ घसीटता-सा था, मानो वह कुछ लंगड़ा-सा रहा हो। उसका सिर दाएँ कन्धे की ओर कुछ झुका हुआ था। नाक तो कुछ

छोटी थी, बीच की हड्डी कुछ उभरी थी, नथुने ऐसे लगते थे मानो क्रोध से फूले हुए हों। मटर के आधे दाने के आकार का एक मस्सा उसके ऊपरी ओंठ को नथुने से जोड़ता था···उसका रंग श्यामल था। इस प्रकार की भद्दी आकृति होते हुए भी समकालीन व्यक्तियों द्वारा "निर्लज्ज चापलूस" संज्ञा दिया गया आत्म-निर्दिष्ट, मिथ्याचारी, परान्नभोजी, अकबर के शासन का वृत्तकार अबुल फ़ज़ल उसको "धरती पर सुन्दरतम व्यक्ति" कहते नहीं थकता। यह स्पष्ट है कि इस मुस्लिम 'इतिहासकार' के लेखन-कार्य के समय उसकी आंखों में विशाल धन-राशि एवं पीठ पर खंजर था।

तेज नशीली वस्तुओं तथा मदान्ध करने वाली जड़ी-बूटियों का व्यसनी अकबर था, इस तथ्य के असंख्य उदाहरणों से इतिहास भरा पड़ा है। वह नशीली पेय तथा खाद्य-वस्तुओं के मिश्रण से निर्मित होने वाली भयंकर नशे वाली वस्तुओं का भी सेवन कर लेता था। अकबर का अपना बेटा जहाँगीर कहता है; 'मेरा पिता, चाहे शराब पिये हो चाहे स्थिर चित्त हो, मुझे सदैव 'शेख बाबू' कहकर पुकारता था'। इसका अन्तर्निहित अर्थ स्पष्ट है कि अकबर प्रायः शराब के नशे में रहता था। (पृष्ठ ८२ पर) विन्सेन्ट स्मिथ ने उल्लेख किया है कि यद्यपि अकबर के (चाटुकार) भांडों ने उसकी मदिरापानावस्था का कोई वर्णन नहीं किया है, तथापि यह निश्चित है कि उसने पारिवारिक परम्परा को बनाए रखा और वह प्रायः आवश्यकता से अधिक शराब पीता रहा।

अकबर के दरबार का ईसाई पादरी अक्वावीवा कहता है कि अकबर इतनी अधिक शराब पीने लगा था कि वह प्रायः (आगन्तुकों से बात करते-करते ही) सो जाया करता था। इसका कारण यही था कि वह कई बार तो ताड़ी पीता था जो अत्यन्त मादक ताड़ की शराब होती थी और कई बार पोस्त की पीता था, जो उसी प्रकार अफ़ीम में अनेक वस्तुएं मिला कर बनायी जाती थी। मदिरापान के दुर्गुण के उसके बुरे उदाहरण का पूर्ण निष्ठा-पूर्वक पालन उसके तीनों बेटों ने युवावस्था प्राप्त होने पर किया।

पृष्ठ २४४ पर यह उल्लेख है कि जब अकबर सीमा से अधिक पी लेता था, तब पागलों जैसी अनेक हरकतें किया करता था। उसको विशेष रूप से एक अति नशीली ताड़ से निकली शराब प्रिय थी। उसके बदले में वह अत्यन्त चटपटी अफ़ीम का अवमिश्रण पिया करता था। अनेक पीढ़ियों से चली आयी अत्यन्त नशीले पेय पदार्थों तथा अफ़ीम को अनेक रूपों में

सेवन करने की पारिवारिक परम्परा को उसने खूब निभाया। अनेक बार तो अतिपान करके निभाया। ऐसे मनचाहे उदाहरण दिये जा सकते हैं, जो पाठक को अकबर की अत्यन्त दुर्गुणी प्रकृति थी—यह विश्वास दिलाने के लिये पर्याप्त होने चाहिये। इस बात पर बल देने की आवश्यकता नहीं कि दुर्गुणी आत्मा जो निरन्तर वर्धमान पापोन्मुखी हो, वही मादकता में संरक्षण चाहता है।

सभी इतिहासकारों ने सर्वसम्मत स्वर में पुष्टि की है कि अकबर निपट निरक्षर था। उसके बेटे जहांगीर ने उल्लेख किया है कि अकबर न तो लिख सकता था और न ही पढ़ सकता, किन्तु वह प्रदर्शित ऐसा करता था जैसे वह अत्यन्त शिक्षित व्यक्ति हो। अकबर का स्वयं ऐसा भाव प्रदर्शित करना उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना अन्य लोगों का उसके सम्मुख यह अभिव्यंजित करना कि जो कुछ अकबर के मुख से निकलता था, वह अत्यन्त बुद्धिमत्ता सम्मत होता था। क्रूर तथा सिद्धान्तशून्य सर्व-शक्तिमान् राजा के सम्मुख उपस्थित होने पर वे और कर भी क्या सकते थे।

अकबर का जीवन उस संस्कृत उक्ति का अच्छा उदाहरण है जिसमें कहा गया है :

> यौवनं धन सम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकता,
> एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्॥

अकबर की कामासक्ति

३१वें पृष्ठ पर स्मिथ कहता है : अबुल फ़ज़ल यह दुहराते हुए कभी नहीं थकता कि अपने प्रारम्भ के वर्षों में अकबर पर्दे के पीछे रहा। अबुल फ़ज़ल का आशय यही है कि अकबर अपना अधिकतम समय अपने हरम में ही बिताया करता था। पृष्ठ ८२ पर स्मिथ हमें सूचित करता है कि पुनीत ईसाई धर्म प्रचारक अक्वावीवा ने अकबर को स्त्रियों से उसके कामुक सम्बन्धों के लिये बुरी तरह फटकार लगाने का प्रबल साहस किया था…अकबर ने लज्जारंजित हो स्वयं को क्षमा कर दिया……। अकबर के हरम का वर्णन करता हुआ अबुल फ़ज़ल कहता है : शहन्शाह ने अपने आराम करने के लिए एक विशाल चहारदीवारी बनायी है, जिसमें अत्यन्त भव्य भवन है। यद्यपि (हरम में) ५००० से अधिक स्त्रियां हैं, शहंशाह ने उनमें से प्रत्येक को पृथक्-पृथक् निवास-गृह दे रखा है। पृथक् निवास-गृह वाला अंश तो झूठ है, क्योंकि

अकबर के समय का कोई ऐसा भवन नहीं मिलता जिसमें ५००० स्त्रियाँ भिन्न-भिन्न निवास-गृहों में रह सकतीं।

बलोचमन द्वारा सम्पादित आईने अकबरी के प्रथम भाग के पृष्ठ २७६ पर अबुल फ़ज़ल पाठक को बताता है : शहंशाह ने महल के पास ही शराब की एक दुकान स्थापित की है···दुकान पर इतनी अधिक वेश्याएं राज्य भर से आकर एकत्र हो गईं कि उनकी गणना करना भी कठिन कार्य हो गया······ दरबारी लोग नचनियों को अपने घर ले जाया करते थे। यदि कोई प्रसिद्ध दरबारी किसी असम्भुक्ता को ले जाना चाहते हैं, तो उनको सर्वप्रथम शहंशाह से अनुमति प्राप्त करनी होती है। इसी प्रकार लड़के भी लौंडेबाजी के शिकार होते थे और शराबीपन तथा अज्ञान से शीघ्र ही खून-खराबा हो जाता था। शहंशाह ने स्वयं कुछ प्रमुख वेश्याओं को बुलाया और उनसे पूछा कि उनका कौमार्य किसने भंग किया था ?

एक सहज किन्तु आवश्यक प्रश्न यह होगा कि ये तथाकथित वेश्याएं कौन थीं ? टिड्डी-दल की भाँति वेश्याओं की यह पूरी फौज की फौज कहाँ से अकबर के राज्य में आ पहुँची ? उत्तर यह है कि सतत वर्धमान ये वेश्याएं उन सम्भ्रान्त हिन्दू महिलाओं के अतिरिक्त और कोई नहीं थीं जिनके घरों को प्रति दिन लूटा-खसोटा जाता था और जो अपने पुरुष-वर्गों की या तो हत्या या धर्म परिवर्तन हो जाने के पश्चात् स्वयं ही अपने लिए प्रबन्ध करने को तथा कामुक मुगल दरबारियों की दया पर असहाय छोड़ दी जाती थीं।

५००० से अधिक स्त्रियों का निर्बाधित हरम तथा राज्य की उन सभी असम्भुक्ता वेश्याओं के होते हुए भी—जिनका कौमार्य, अबुल फ़जल के अनुसार, अकबर की पूर्ण इच्छा पर ही टूट सकता था तथा जिसको कोई भी दरबारी बिना विशेष अनुमति के भंग नहीं कर सकता था—उमरावों तथा दरबारियों की पत्नियों का सम्मान भी अकबर की कामुक वृत्ति का शिकार था। सर जदुनाथ सरकार द्वारा सम्पादित अकबर के भाग ३ में अबुल फ़ज़ल कहता है, जब भी कभी बेगमें अथवा उमरावों की पत्नियाँ या ब्रह्मचारिणियां उपहृत होने की इच्छा करती हैं, तो उनको अपनी इच्छा की सूचना सबसे पहले वासनालय के सेवकों को देनी होती है और फिर उत्तर की प्रतीक्षा करनी होती है। वहाँ से उनकी प्रार्थना महल के अधिकारियों के पास भेज दी जाती है, जिसके पश्चात् उनमें से उपयुक्तों को हरम में प्रविष्ट होने की अनुमति दे दी

जाती है। उच्च वर्ग की कुछ महिलाएं वहाँ एक मास तक रहने की अनुमति प्राप्त कर लेती हैं।

यह स्मरण रखते हुए कि अबुल फ़ज़ल "निर्लज्ज चाटुकार" की संज्ञा से विभूषित है, उपर्युक्त उद्धरण इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि उमरावों और दरबारियों की पत्नियों तक को भी, जिनकी ओर वह आकृष्ट हो जाता था, अकबर अपने हरम में कम से कम एक मास तक रहने के लिए बाध्य करता था।

यह निष्कर्ष रणथम्भौर की सन्धि की शर्तों का आकलन करने पर और पुष्ट हो जाता है। विन्सेन्ट स्मिथ द्वारा दी गई सूची में पहली शर्त थी राजपूतों का (स्त्री का) 'डोला' शाही हरम में भिजवा कर उनका तिरस्कार करने के रिवाज से बूंदी के (किले के स्वत्वाधिकारी) सरदारों को छूट देना। यह प्रदर्शित करता है कि पराभूत शत्रुओं के घरों से मनपसन्द स्त्रियों को अपने हरम में भरती कर लेने का अपकारी रिवाज अकबर ने चालू कर रखा था। इस प्रकार अकबर द्वारा विजित प्रदेशों की स्त्रियां, चाहे वे साधारण परिवारों से हों, चाहे उमरावों से अथवा राजघरानों, से अकबर की रति-विषयक दया पर निर्भर करती थीं।

अकबर की स्त्रियों-विषयक घोर दुर्बलता का उल्लेख करते हुए स्मिथ पृष्ठ ४७ पर कहता है : जनवरी १५६४ के प्रारंभ में अकबर दिल्ली की ओर गया। जब वह एक सड़क से गुजर रहा था, तब सड़क के किनारे बनी इमारत के छज्जे से एक पुरुष ने एक तीर मारा जिससे अकबर का कंधा घायल हो गया। प्रतीत होता है, अकबर ने हत्यारे के पापसहायों का पता लगाने के प्रयत्नों को निरुत्साहित किया। अकबर उस समय दिल्ली परिवारों की स्त्रियों से विवाह करने की योजना में लगा हुआ था तथा उसने एक शेख को अपनी पत्नी अकबर को समर्पित करने के लिए बाध्य किया था। हत्या का प्रयत्न सम्भवतः अकबर द्वारा परिवारों के सम्मान के हरण विरुद्ध रोष का प्रतिफल था। पत्नियों और रखेलों के मामलों में अकबर ने स्वयं को पर्याप्त छूट दे रखी थी।

इस कुत्सित वर्णन से यह स्पष्ट मालूम देता है कि चूंकि अकबर की आंख बैरामखां की पत्नी पर लगी हुई थी और उसने बैरामखां की हत्या के पश्चात् उसकी पत्नी से शादी भी कर ली थी, अपने पूर्वकालीन संरक्षक की नृशंस तथा दुःखान्त समाप्ति भी अकबर ने ही करवायी होगी।

३७वें पृष्ठ पर स्मिथ ने वर्णन किया है कि किस प्रकार अकबर के सेनापति आदमखां ने मांडवगढ़ के शासक बाज़ बहादुर को पराजित करने के पश्चात् 'अपने लिये स्त्रियों तथा लूट-खसूट की अन्य वस्तुओं को सुरक्षित रखते हुए' अकबर के पास "हाथियों के सिवा और कुछ नहीं भेजा।" अकबर ने आगरा से २७ अप्रैल १५६१ को प्रस्थान किया और बाज़ बहादुर के हरम की स्त्रियों को अपने हरम में प्रविष्ट करने के लिए विशाल बलशाली सेनाओं से बाज़ बहादुर को चकित कर दिया। इस प्रकार अकबर का हरम सैकड़ों स्त्रियों से निरन्तर वर्धमान किया जाता रहता था। इन स्त्रियों की दशा का केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है। कल्पना की जा सकती है कि उनका जीवन किसी भी तरह उत्तम नहीं रहा होगा। वे तो केवल पशु-समूहों की भांति रही होंगी और इसलिए अबुल फज़ल का बलपूर्वक घोषित करना कि उन स्त्रियों के निवास के लिए पृथक्-पृथक् आवास दिए गए, मुस्लिम चाटुकारिता का सामान्य अंश प्रतीत होता है।

विन्सेन्ट स्मिथ पृष्ठ १६३ पर एक अन्य घटना का उल्लेख करता है, जो फिर अकबर की सम्भोगेच्छा की ओर संकेत करती है। राजा भगवान्दास का सम्बन्धी जयमल एक अल्पकालिक यात्रा पर भेजा गया था। घटना के भ्रष्ट पाठ में कहा गया है कि जयमल मार्ग में ही मर गया। उन भयावह दिनों में जीवित रहने की कामना न रखने के कारण उसकी विधवा पत्नी ने स्वयं को अपने पति के शव के साथ ही अग्नि को सौंप देने की तैयारी की। अकबर ने उस विधवा के साथ जाने वालों का पीछा करने एवं उनको पकड़ने के पश्चात् वन्दी बनाने के कार्य में कोई देर न की। थोड़े-से भी अन्वेषण द्वारा यह दर्शाया जाना सम्भव हो सकता है कि जयमल को जानबूझ कर मार डाला गया हो एवं उसकी विधवा पत्नी को अकबर के हरम में ठूंस दिया गया हो।

१८५ वें पृष्ठ पर स्मिथ का कहना है कि 'ग्रिमन का कथन कि अकबर एकनिष्ठ पति रहा तथाउसने रखेलों को अन्य दरबारियों में वितरित कर दिया था, अन्य स्रोतों से पुष्ट नहीं होता।' अकबर की कामुकता में यह एक नया अध्याय जुड़ जाता है क्योंकि यह प्रदर्शित करता है कि किस प्रकार अकबर और उसके दरबारियों के मध्य स्त्रियां केवल चल सम्पत्ति के समान ही उन लोगों की काम-वासना-तृप्ति के लिए इधर-उधर विनिमय की जाने वाली व्यभिचार

की सामग्रीमात्र समझी जाती थीं। उन लोगों की स्थिति मांस बाजार में स्थित उन मेमनों की-सी थी जिनको व्यावसायिक समझौते का निर्णय होने तक विक्रेता और ग्राहक के मध्य बार-बार इधर से उधर घसीटा जाता है।

इसके साथ ही मीना बाजार नाम की कुख्यात प्रथा थी, जिसके अनुसार नव वर्ष के दिन सब घरों की महिलाओं को अकबर की रुचि के अनुसार चयन किये जाने के लिये उसके सामने से समूह में निकाला जाता था। अकबर के शासन के वर्णनों में से कामुकता के सभी सम्भव रूपों की ऐसी दुःखदायी कथाएं जितनी मर्ज़ी संख्या में उपलब्ध की जा सकती हैं।

अकबर की क्रूरताएं

क्रूरता में अकबर की गणना इतिहास के घोरतम क्रूर सम्भोगियों में की जानी चाहिये।

पृष्ठ २० पर विन्सेन्ट स्मिथ कहता है कि ग्वालियर में सन् १५६५ में कामरान (अर्थात् अकबर के अपने भाई) के पुत्र को निजी रूप में मार डालने के अकबर के कार्य ने अत्यन्त घृणित उदाहरण प्रस्तुत किया जिसकी नक़ल उसके अनुवर्ती शाहजहाँ और औरंगजेब ने खूब की। 'इस प्रकार शाहजहाँ और औरंगजेब द्वारा किये गए अत्याचार उनकी अपनी नवीन कल्पनाएं न होकर उनके यशस्वी (?) पूर्वज अकबर द्वारा भली भांति रचित परम्परा में उनको विरासत में सिखाए गए थे। यह साधारण-सा सत्य भी भारतीय इतिहास के तथाकथित विद्वानों द्वारा उपेक्षित कर दिया जाता है। तभी तो वे अकबर की महानता के भ्रम जाल को स्थिर बनाए हुए हैं।

पानीपत के युद्ध के पश्चात् ६ नवम्बर १५५६ के दिन जब अकबर के सम्मुख घायल तथा अर्ध-चेतनावस्था में हेमू को लाया गया तब अकबर ने अपनी टेढ़ी तलवार से उसकी गर्दन पर प्रहार किया—स्मिथ का कथन है। अकबर उस समय केवल १४ वर्ष का था। उस छोटी आयु से ही उसने कायरों की भांति अपने पराभूत तथा असहाय शत्रुओं की हत्या करने का यश अर्जित किया था। इस प्रकार का उसका लालन-पालन था।

पानीपत की लड़ाई के बाद अकबर की विजयी सेनाएं सीधे दिल्ली की ओर कूंच कर गईं, जहाँ उनके लिए द्वार खोल दिये गए। अकबर राज्य में जा घुसा। आगरा भी उसी के अधीन आ गया। उस काल की पैशाचिक प्रथा के अनुसार कत्ल किये गए व्यक्तियों के सिरों का एक स्तम्भ बनाया गया।

हेमू के परिवार के साथ ही विपुल कोष भी ले लिया गया था। हेमू का वृद्ध पिता मौत के घाट उतार दिया गया। (स्मिथ की पुस्तक का पृष्ठ ३०)

खान जमन के विद्रोह को दबाने के अवसर पर उसके विश्वासपात्र मुहम्मद मिरक को वध-स्थल पर पाच दिन निरन्तर यातनाएं दी गईं। प्रत्येक दिन एक लकड़ी के कटघरे में उसकी मुश्कें बांध कर उसको हाथी के सामने लाया जाता था। हाथी उसे सूंड से पकड़ता था, झकझोरता था और एक से दूसरी ओर उछालता था। अबुल फ़ज़ल ने इस लोमहर्षक बर्बरता का उल्लेख भर्त्सना का एक भी शब्द कहे बिना किया है।" (पृष्ट ५८)।

पृष्ठ ६४ पर स्मिथ का कहना है कि चित्तौड़ के अविग्रहण के पश्चात् 'अपनी सेनाओं के सतत सशस्त्र प्रतिरोध किये जाने से प्रकुपित हो अकबर ने दुर्गरक्षक सेना तथा जनता के साथ क्रूरतम निर्ममता का व्यवहार किया। शहंशाह ने कत्लेग्राम का सार्वजनिक आदेश दे दिया, जिसके परिणामस्वरूप ३०००० लोग मारे गए। बहुत-से लोग बन्दी बनाए गये।

अकबर के ऊपर सबसे बड़ा लांछन कदाचित् महान् इतिहासकार कर्नल टाड के इन शब्दों में है कि चित्तौड़ में शंहशाह की गतिविधियाँ सर्वाधिक निपट अत्याचारों से भरी पड़ी हैं।"

नवम्बर १५७२ में जब अकबर अहमदाबाद के शासक मुज़फ़्फ़रशाह को हरा कर बन्दी बना चुका था, तब उसने आज्ञा दी थी कि विरोधियों को हाथियों के पैरों तले रौंद कर मार डाला जाय।

१५७३ में सूरत का घेरा डालने वाली अकबर की सेनाओं के सेनानायक हमजबान को उसकी जबान काट कर बर्बरतापूर्ण दण्ड दिया गया।

अकबर के निकट सम्बन्धी मासूद हुसैन मिर्ज़ा की आंखों को सुई से सी दिया गया था जब वह उसके विरुद्ध बग़ावत करने के बाद पकड़ा गया था। उसके अन्य ३०० सहायकों के चेहरों पर गधों, भेड़ों और कुत्तों की खालें उढ़ा कर अकबर के सम्मुख घसीट कर लाया गया था। उनमें से कुछ को अत्यन्त घृणित क्रूरता से मार डाला गया। स्मिथ ने कहा है कि अपने तातारी पूर्वजों से पैतृक रूप में गृहीत ऐसी बर्बरताओं की अनुमति देते हुए अकबर को देखकर अत्यन्त घृणा होकर जी ऊब जाता है।

पृष्ठ ८६ के अनुसार जब अहमदाबाद के युद्ध में सितम्बर २, १५७३ ई० को मिर्ज़ा पराजित कर दिया गया था, तब विद्रोहियों के २००० से अधिक

सिरों से एक पिरामिड बनाया गया था।

बंगाल का शासक दाऊदखाँ जब पराजित कर दिया गया, तब उस समय के बर्बरतापूर्ण रिवाजों का अनुसरण करते हुए (अकबर के सेनानायक मुनीर खां ने) उसके बन्दी लोगों को मौत के घाट उतार दिया। उन लोगों के कटे हुए सिरों की संख्या आकाश को छूने वाले आठ ऊंचे-ऊंचे मीनारों को बनाने के लिए पर्याप्त थी (देखिए 'अकबरनामा' -३, पृष्ठ १८०)। प्यास से आकुल होने पर जब दाऊद खां ने पीने के लिए पानी मांगा, तब उन लोगों ने उसकी जूतियों में पानी भर कर उसके सामने पेश कर दिया।

ये उदाहरण पाठक को इस बात का विश्वास दिलाने के लिए पर्याप्त होने चाहिए कि अकबर का शासन ऐसी क्रूरताओं की कभी न समाप्त होने वाली कथा है।

अकबर की प्रवंचना

स्मिथ द्वारा वर्णित अकबर के शासन में अकबर की धोखेबाज़ी के असंख्य उदाहरण मिलते हैं। ५७वें पृष्ठ पर वह लिखता है: दिल्ली के उत्तर में हिन्दुओं के प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान थानेश्वर में घटी असाधारण घटना, जब कि शाही खेमा वहां लगा हुआ था, अकबर के चरित्र पर अत्यन्त असुखद प्रकाश डालती है।

"पवित्र कुंड पर एकत्र संन्यासी कुरु एवं पुरी वाले दो भागों में बंटे हुए थे। पुरी वालों ने बादशाह से शिकायत की कि चूंकि कुरु वालों ने अवैध रूप में पुरी वालों का बैठने का स्थान हथिया लिया, इसलिये वे जनता से दान ग्रहण करने से वंचित रह गए थे।" उन लोगों से (बादशाह द्वारा) कहा गया कि आपस में युद्ध करके निर्णय कर लो। दोनों ओर के लोगों को शस्त्रास्त्रों से लैस करा कर लड़ाया गया। इस लड़ाई में दोनों पक्षों ने तलवारों और तीर-कमानों का खुल कर प्रयोग किया। "यह देखते हुए कि पुरी वालों का पलड़ा भारी था, अकबर ने अपने और भी खूंखार जंगली सेवकों को आदेश दिया कि वे निर्बल पक्ष की ओर मिल जाएँ।" यह तो रोटी के टुकड़े पर झगड़ने वाली दो बिल्लियों तथा उनका हिस्सा बराबर बांटने को आए बन्दर वाली ईसप की कथा से भी बदतर है। हिन्दू सन्यासी-वर्गों के मध्य हुए इस झगड़े में अकबर यही कार्य करता रहा कि अन्त में दोनों ही वर्गों के लोग अकबर के बर्बर सैनिकों द्वारा पूर्णतः समाप्त कर दिए गए।

स्मिथ ने उल्लेख किया है कि 'अकबर के वृत्तलेखक ने चिकनी-चुपड़ी बातें बना कर लिखा है कि इस खेल से अकबर को अत्यन्त प्रसन्नता हुई थी।"

हल्दीघाटी के युद्ध में जब समरांगण में राणा प्रताप की विशाल सेना के विरुद्ध अकबर की सेना भी सन्नद्ध विचरण कर रही थी, तब यह वास्तव में राजपूत के विरुद्ध राजपूत का ही युद्ध था, क्योंकि अकबर ने अपने आतंकित करने वाले अत्याचारों से अनेक राजपूत-प्रमुखों को अपने समक्ष समर्पण करने के लिए बाध्य कर दिया तथा अब उन्हीं के द्वारा उनमें सर्वाधिक स्वाभिमानी महाराणा प्रताप का मस्तक नीचा करना चाहता था। एक अवसर पर जब कि दोनों पक्ष घमासान युद्ध में लगे हुए थे और यह पहचानना कठिन था कि कौन-सा राजपूत अकबर की सेना का है और कौन प्रताप का, अकबर की ओर से युद्ध कर रहे बदायूनी ने अकबर के सेनानायक से पूछा कि वह कहाँ गोली चलाए जिससे केवल शत्रु ही मर पाए। सेनानायक ने उत्तर दिया कि इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। वह राजपूत फौज पर जहाँ भी गोली चलाएगा तथा जो भी कोई मरेगा, इस्लाम का ही लाभ होगा। बदायूनी का कहना है कि यह आश्वासन मिल जाने पर, यह विश्वास मन में जम जाने पर कि कोई सावधानी आवश्यक नहीं है, मैंने प्रसन्न हो अन्धा-धुन्ध गोलियों की बौछार शुरू कर दी।

कर्नल टाड का कथन है कि चित्तौड़ का अधिग्रहण कर लेने के पश्चात् "पहले विजेताओं द्वारा जितने भी स्मारक बच पाए थे, उनमें से प्रत्येक को अकबर ने अपरूप किया। बहुत समय तक अकबर की गणना शहाबुद्दीन, अलाउद्दीन तथा अन्य मूर्ति-भंजकों के साथ की जाती रही तथा प्रत्येक न्याय-दावे के साथ तथा इन्हीं के समान उसने (राजपूतों के पैतृक उपास्य देव) "एकलिंग" की देवमूर्ति को तोड़ कर मस्जिद में कुरान पढ़ने के लिए आसन (मिम्बर) बनवाया।" यह तथ्य उस भरसक प्रयत्नपूर्वक प्रचारित धारणा को झूठा सिद्ध करता है जिसमें कहा जाता है कि अकबर हिन्दुओं के प्रति अत्यन्त सहिष्णु था एवं उनके देवी-देवताओं का सम्मान करता था।

ईसा के पश्चात् लगभग १६०३ ई० में या उसके आसपास एक दिन अकबर जो दोपहर के समय विश्राम के लिए अपने कमरे में जाने का अभ्यासी था, अनपेक्षित रूप में जल्दी उठ बैठा और तुरन्त किसी भी सेवक को न

देख पाया। जब वह तख्त और पलग के पास आया, तो उसने शाही पलंग के निकट ही एक अभागे मशालची को नींद में लुढ़का हुआ पाया। इस दृश्य से क्षुपित होकर अकबर ने आदेश दिया कि उस मशालची को मीनार से नीचे जमीन पर पटक दिया जाय। उसकी देह के टुकड़े-टुकड़े हो गए।"

पृष्ठ १४५ व १४६ पर स्मिथ पर्यवेक्षण करता है: "पुर्तगालियों के प्रति अकबर की नीति अत्यन्त कुटिल एवं धूर्त्ततापूर्ण थी। मित्रतापूर्वक आमंत्रित किए जाने पर जब धर्म-प्रचारक उसके दरबार में पहुँचने ही वाले थे, उसी क्षण के लिये उसने यूरोपियनों के किलों को हस्तगत करने के लिए एक पूरी फौज का संगठन कर लिया था। अकबर की दोगली नीति के लक्षण देख कर ईसाई प्रचारक अत्यन्त चिन्तित हुए थे—एक ओर तो अकबर मित्रता की इच्छा का ढोंग करता था और दूसरी ओर वास्तव में शत्रुतापूर्ण कार्रवाइयों के आदेश देता था।"

सन् १६०० के अगस्त मास में जब अकबर की फौजों ने असीरगढ़ के किले को घेर तो लिया था किन्तु उसे विजित करने की कोई आशा न रही थी, तब, विन्सेन्ट स्मिथ का पृष्ठ २० पर कहना है, अकबर ने अपने दक्ष उपायों, अभिसन्धि तथा धूर्तता का सहारा लेने का निश्चय किया। इसलिये (असीरगढ़ के) राजा मिरान बहादुर को बातचीत के लिए आमंत्रित किया तथा स्वयं अपनी ही कसम खाकर विश्वास दिलाया कि आगन्तुक को शान्तिपूर्वक अपने घर वापस जाने दिया जायगा। तदनुसार मिरान बहादुर समर्पण का भाव प्रदर्शित करते हुए दुपट्टा ओढ़ कर बाहर आया... अकबर बुत की भाँति निश्चल बैठा रहा...मिरान बहादुर तीन बार सम्मान प्रदर्शित कर ज्यों ही अकबर की ओर बढ़ रहा था कि एक मुग़ल अधिकारी ने उसको गर्दन से पकड़ लिया और नीचे तक पटक कर भूमि पर साष्टांग प्रणाम करने के लिये विवश कर दिया...यह ऐसी पद्धति थी जिस पर अकबर बहुत बल देता था। उसको बन्दी बना लिया गया और कहा गया कि वह किले के सेनापति को समर्पण करने के लिये लिखित आदेश दे। सेनापति ने समर्पण करना स्वीकार नहीं किया और राजा की मुक्ति के लिए उसने अपने बेटे को भेज दिया। उस युवक से पूछा गया कि क्या उसका पिता समर्पण करने के लिए उद्यत था। इस प्रश्न का मुँहतोड़ उत्तर देने पर उसके पेट में छुरा भोंक दिया गया। दुर्ग के सेनानायक को सूचित कर दिया गया कि उसका पुत्र उस

समय मार डाला गया जब कि वह स्वयं तो सन्धि एवं समर्पण के लिए तत्पर हो गया था किन्तु दुर्गरक्षकों को भाषण कर रहा था कि आखिरी व्यक्ति के रक्त की अन्तिम बूंद तक युद्ध लड़ा जायगा।" यह उदाहरण सिद्ध करेगा कि अकबर की नीचता में सभी बातें न्याय थीं और उसका छल-कपट गर्हित सीमाओं से भी बढ़ सकता था।

इन्द्रिय-लोलुपता अकबर की विजयों का प्रयोजन था

अकबर की विजयों का प्रमुख उद्देश्य धनसम्पत्ति, स्त्री, क्षेत्र तथा सत्ता की लोलुपता थी। रणथम्भौर की सन्धि में हम देख चुके हैं कि पराजित लोग सदा ही अपनी महिलाएं अकबर को सौंप देने के लिए बाध्य किये जाते रहे हैं। बाज़ बहादुर के विरुद्ध अकबर की चढ़ाई में हम पहले ही पर्यवेक्षण कर चुके हैं कि स्त्रियों के प्रति अकबर की इन्द्रिय-लोलुपता ही ने उसको आगरा से दूर चल कर आदमखां के विरुद्ध सशस्त्र सेनाएं भेजकर, आदम खां द्वारा बाज़ बहादुर के महिला-वर्ग को अनुचित रूप से हड़प लेने के कारण, उपयुक्त कार्रवाई के लिये बाध्य किया।

बुन्देलखण्ड की रानी दुर्गावती के विरुद्ध अकबर की चढ़ाई के सम्बन्ध में स्मिथ ने (पृष्ठ ५०-५१ पर) विलाप करते हुए कहा है, इतनी सच्चरित्र राजकुमारी के ऊपर अकबर का आक्रमण अतिक्रमण के अतिरिक्त और कुछ न था। यह पूर्णरूपेण अन्यायपूर्ण तथा विजय और लूट-खसूट के सिवा अन्य सभी कामनाओं से हीन था। पर्याप्त शक्ति से सम्पन्न सामान्य राजोचित महत्त्वाकांक्षा का परिणाम ही अकबर की विजय हुई। रानी दुर्गावती की अत्युत्तम सरकार के ऊपर नैतिक न्याय के अभाव का आक्रमण उन सिद्धान्तों को मानकर हुआ था जिनके फलस्वरूप कश्मीर, अहमदनगर तथा अन्य राज्यों की विजय की गई। किसी भी युद्ध को प्रारम्भ करने में अकबर को कभी भी कोई संकोच या लज्जा का अनुभव नहीं हुआ और एक बार झगड़ा प्रारम्भ कर देने के पश्चात् वह शत्रु पर निर्दयतापूर्वक प्रहार करता था। उसकी गतिविधियां अन्य योग्य, महत्त्वाकांक्षी तथा निष्ठुर राजाओं की भांति थीं।

मेवाड़ के राणा प्रताप के विरुद्ध भीषण निरंकुश आक्रमण का वर्णन करते हुए स्मिथ ने पृष्ठ १०७ पर उल्लेख किया है, 'राणा पर आक्रमण करने के लिए किसी विशेष घटना को कारण मानना कोई आवश्यक बात नहीं है। सन् १५७६ की लड़ाई राणा का नाश करने के लिए एवं अकबर के साम्राज्य से

बाहर स्वाधीनता को कुचल देने के लिये की गई थी। अकबर ने राणा की मृत्यु तथा उसके क्षेत्र को हड़प लेने की कामना की थी।'

राणा प्रताप और अकबर के मध्य परस्पर संघर्ष की सही समझ ही किसी भी विचारवान् प्रेक्षक के मन में अकबर की निन्दा करने के लिए पर्याप्त होनी चाहिए। चूंकि दोनों ही परस्पर-विरोधी कार्य में लगे हुए थे तथा एक-दूसरे के प्राण लेने के लिए संघर्षरत थे, इतिहास का कोई भी विद्यार्थी इनमें से एक को अन्याय, अत्याचार तथा दमन का प्रतिनिधि मानने के उत्तरदायित्व को दूर नहीं कर सकता। चूंकि राणा प्रताप तो अनुत्तेजित आक्रमण के विरुद्ध लड़ाई में संलग्न इस भूमि की सन्तान था, अतः यह निष्कर्ष स्वतः निकलता है कि एक सामन्तराज्य के पश्चात् दूसरे सामन्तराज्य पर आक्रमण कर निरंकुश नर-संहार तथा अन्य अपराधों के लिए अकबर पर आरोप लगाया ही जाना चाहिये। फिर भी पर्याप्त विचित्रता यह है कि अकबर को देवदूत के रूप में प्रस्तुत करने वाली अनेक स्तुतियों से भारतीय इतिहास बुरी तरह से लदा पड़ा है।

अकबर का धर्माडम्बर

भारतीय इतिहास में प्रविष्ट अनेक गर्हित तथा कल्पित बातों में से एक यह है कि अकबर का देवदूत-स्तरीय गुण इस बात से सिद्ध होता है कि उसने 'दीने इलाही' नामक एक लौकिक धर्म की स्थापना की थी। यह सत्य का पूर्ण अपलाप है। अकबर की गरम मिजाजी और बड़प्पन की भावना इस सीमा तक पहुंच चुकी थी कि वह धर्म के नाम पर मुल्लाओं तथा मौलवियों के फ़तवे सहन नहीं कर सकता था। अकबर इस बात पर स्वयं बल देता था कि वह स्वयं ही देवांश था—सर्वोच्च लौकिक तथा आध्यात्मिक सत्ता था—तथा अन्य किसी भी व्यक्ति के प्रति सम्मान प्रदर्शन किसी भी कारणवश नहीं किया जाना चाहिए। ऐसा हठ करना तो समस्त धर्मों का अस्वीकार था, तथा स्त्री-पुरुषों के भाग्यों पर लम्पट तथा निरंकुश सत्ता स्वयं में केन्द्रित करने का यत्न मात्र था।

उस दशा में उसने लोगों को बाध्य किया कि वह एक-दूसरे से मिलकर 'अल्लाहो अकबर' कहकर सम्बोधन करें—जिसका एक अर्थ यह है कि 'ईश्वर शक्तिमान् है, किन्तु अधिक सूक्ष्म विचार करने पर ऐसा अर्थ ज्ञात होता है कि "अकबर स्वयं ही अल्लाह है।"

पृष्ठ १२७ पर स्मिथ ने व्याख्या की है : "अनेकार्थक शब्द "अल्लाहो अकबर' के प्रयोग ने अत्यन्त कटु आलोचनाओं का अवसर दिया। अबुल फ़ज़ल भी स्वीकार करता है कि इस नए नारे ने उग्र भावनाओं को जन्म दिया। अनेक अवसरों पर वह (अकबर) स्वयं को ऐसा व्यक्ति प्रस्तुत करता था, जिसने अन्त और अनन्त के मध्य की खाई पाट दी हो।'

अपने धर्म-प्रचार की असफलता पर दुःखित हृदय हो, पादरी मनसरंट ने (पृष्ठ १४८ पर) वर्णन किया है : "यह सन्देह किया जा सकता है कि ईसाई पादरियों को जलालुद्दीन (अकबर) द्वारा किसी उदात्त भावना से प्रेरित होकर नहीं, अपितु उत्सुकता-वश अथवा आत्माओं के सर्वनाश के लिये किसी नई वस्तु का प्रारम्भ करने के लिये बुलाया गया था।'

पृष्ठ १२५ पर स्मिथ ने वर्णन किया है कि पादरियों द्वारा भेंट में दी गई बाइबल किस प्रकार अकबर ने बहुत दिनों बाद वापस लौटा दी थी।

स्मिथ ने पृष्ठ १५३ पर पर्यवेक्षण किया है, "सत्य यह है कि अकबर के ढोंगी धर्म का अस्तित्व क्षणभंगुर तथा आध्यात्मिक दोनों ही प्रकार के तत्त्वों पर अपनी प्रभुसत्ता प्रस्थापित करने में ही है। शहंशाह अकबर के प्रति भक्ति प्रदर्शित करने की चार श्रेणियाँ सम्पत्ति, जीवन, सम्मान तथा धर्म का बलिदान करने में समझी जाती थीं।" (पृष्ठ १५४)

"सामान्य सहनशीलता के सुन्दर वाक्यों के होते हुए भी, जो कि अबुल फ़ज़ल की रचनाओं तथा अकबर के कथनों में अत्यन्त विपुलमात्रा में उपलब्ध होते हैं, अत्यन्त असहनशीलता के अनेक क्रूर कर्म किए गए थे।" (पृष्ठ १५९)

अकबर के राजनैतिक धर्माडम्बर के सम्बन्ध में स्मिथ ने (पृष्ठ १६० पर) कहा है : "सम्पूर्ण योजना उपहासास्पद मिथ्याभिमान तथा निरंकुश स्वेच्छाचारिता के राक्षसी विकास का परिणाम थी।"

अकबर ने किस प्रकार हिन्दुओं का तिरस्कार किया

अकबर के दरबार में उपस्थित ईसाई पादरी ज़ेवियर ने अकबर द्वारा अपने चरणों की धोवन (पगों को धोने के पश्चात् अवशिष्ट मैला जल) जन-सामान्य को पिलाने के विशिष्ट उदाहरण का उल्लेख किया है। स्मिथ ने (पृष्ठ १८९ पर) कहा है कि ज़ेवियर ने लिखा है कि 'अकबर अपने आपको पैग़म्बर की भांति प्रस्तुत करता था। इसके लिये जनता को मान लेना होता था कि उसके चरणों के धोवन (जल) को पी लेने से रोगी अकबर के

देवदूत-सदृश चमत्कार से ठीक हो जाते हैं।" उसी पृष्ठ पर उल्लिखित पदटीप में तत्कालीन वृत्त लेखक बदायूनी के उल्लेखानुसार कहा गया है कि इस विशेष प्रकार का अपमानजनक व्यवहार केवल हिन्दुओं के लिये सुरक्षित था। बदायूनी कहता है, "यदि हिन्दू-इतर लोग आते और किसी भी मूल्य पर अकबर की भक्ति की इच्छा प्रकट करते, तो अकबर उनको झिड़क देता था।" महिलाएँ पूर्णरूपेण दूरवस्था तथा अत्यन्त दीना-हीना होने पर सर्वस्वअपहृता, यातनाग्रस्त हो अन्तिम उपाय के रूप में अकबर के चरणों में अपने बच्चों को लिटा देती तथा दया की भीख मांगती थीं। जैसा कि ऊपर देखा ही जा चुका है, अनेक रूपों में दमन की प्रक्रिया नित्य प्रति की बात होने के कारण अकबर के दरबार के द्वार पर महिलाओं और बच्चों की अपार भीड़ हुआ करती थी। किन्तु अकबरी दरबार के धूर्त सरदारों ने उन पादरियों को इसकी व्याख्या ऐसे समझायी मानो अकबर को महान् फकीर मान कर वे उसका आशीर्वाद लेने के लिए एकत्र होते हों। 'आशीर्वाद' के लिये तो वे निश्चय ही प्रार्थना करते थे, किन्तु उस भावना से नहीं, जिस भावना के साथ इसका छद्मपूर्वक सम्बन्ध जोड़ दिया गया है। उन लोगों के ऊपर बीत रहे उत्पीड़न तथा नारकी यातना से वे महिलाएँ एवं बच्चे कुछ छुटकारा चाहते थे।

अकबर द्वारा अनेक राजपूत महिलाओं से विवाह को बहुधा तोड़मरोड़ कर इसे तथाकथित सहयोग और सहनशीलता की भावना के भव्य उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। यह जले पर नमक छिड़कना तथा कामुकता (लम्पटपन) को प्रोत्साहन देना है। यह भलीभांति ऊपर दिखाया जा चुका है कि अकबर अपने सम्पूर्ण राज्य को बड़ा भारी हरम समझता था तथा सभी पराभूत नरेशों की महिलाओं को, उन नरेशों पर जोर-जबरदस्ती से उन्हें बाध्य कर, अपने अधीन कर लेता था। अपने शिकार व्यक्तियों का पूर्ण तिरस्कार करने के लिये यह उसके अनेक उपायों में से एक था। हिन्दू महिलाओं को बलपूर्वक अपने हरम में ठूंस लेना सभी आक्रमणकारियों की गर्हित अधमाधम परम्परा रही है। अनेक कारणों से अकबर का इस ओर विशेष रुझान था। अतः इस बात को एक विशेष गुण कह कर प्रस्तुत करना उस भ्रष्टता, मिथ्यावाद तथा वाक्छल की पराकाष्ठा है, जिससे भारतीय इतिहास बुरी तरह ग्रस्त है।

क्या अकबर ने अपने घर की एक भी (मुगल) महिला कभी किसी हिन्दू को विवाह में दी ?

अकबर ने कर-व्यवस्था से लोगों की खाल उतार ली

स्मिथ कहता है कि टोडरमल की अत्यन्त शेखीपूर्ण राजस्व प्रणाली लोगों से धनापहरण कर लेने के सिवा कुछ नहीं थी। बहुत-से भारी करों को वसूल करने के लिये बहुधा जनता को कोड़े लगाए जाते थे। उन लोगों को बहुधा दासों के रूप में अपनी पत्नियों को बेच देना पड़ता था। इसके होते हुए भी पाठशालाओं तथा विद्यालयों के विद्यार्थियों, शिक्षकों, प्राध्यापकों और अध्यापकों को तथाकथित 'राजस्व प्रणाली' के लिए टोडरमल और अकबर की मिथ्या प्रशंसा करने के लिये बाध्य किया जाता है।

अकबर के शासन के सम्बन्ध में जिस सफेद झूठ को बार-बार दुहराया जाता है, वह यह है कि उसने जानलेवा जज़िया कर समाप्त करवा दिया था। यह कर भारत के विदेशी मुस्लिम शासकों द्वारा यहां की बहुसंख्यक हिन्दू प्रजा पर इस आधार पर लगाया जाता था कि भारत मुस्लिम देश था तथा चूंकि उदारता एवं सहिष्णुता की भावना से ही शासक ने यहाँ की बहु-संख्या को शासक के धर्म से इतर धर्म को चालू रख सकने की छूट दे रखी थी, इसीलिये जनता को उस [शासक] की सहिष्णुता के लिये जैसे भी हो यह कर देना ही चाहिये। इस प्रकार यह धार्मिक भेदभाव छिपाने के लिये घूस एवं डकैती के सिवा कुछ नहीं था, जिसे शासक वर्ग ने अपनी असहाय प्रजा पर बलात् ठूंस रखा था।

जज़िया से मुक्ति दिलाना तो दूर, अकबर तो स्वयं इसको पूर्ण बदले की भावना से वसूल करता था। रणथम्भौर की सन्धि की एक शर्त में बूंदी के शासक को जज़िया कर से विशेष छूट की व्यवस्था की गई थी। (पृष्ठ १२० पर वर्णित) जैन मुनि हरि विजयसूरि की यात्रा के सम्बन्ध में हम सुनते हैं कि उसने फिर जज़िया से मुक्ति के लिए कहा था। यह बात सिद्ध करती है कि जज़िया कर से विशेष छूट पाने के लिये प्रार्थना करने को लोग बार-बार बाध्य होते थे। इससे भी बढ़कर बात यह है कि अकबर ने यदा-कदा आए किसी आगन्तुक को कदाचित् यह विश्वास दिला कर दरबार से वापस भी भिजवा दिया हो कि उसको जज़िया से विशेष छूट मिल जाएगी। तो भी अब हम अकबर के उन ढंगों को पर्याप्त रूप से जान कर विश्वास करने लगे हैं कि

यह वाक्छली धूर्त यजमान द्वारा दिया गया केवल थोथा आश्वासन था।

इतिहास में सर्वाधिक घृणित व्यक्ति अकबर था

भारतीय इतिहास में प्रस्तुत किए जा रहे देवदूत के रूप की तो बात ही क्या, अकबर तो कदाचित् विश्व भर में सबसे घृणित व्यक्ति था। उस के प्रति रोष इतना अधिक था कि स्वयं उसके अपने लड़के जहाँगीर सहित असंख्य लोगों ने अकबर की हत्या का प्रयत्न किया।

स्मिथ ने पृष्ठ २२० पर वर्णन किया है: "सन् १६०२ के पूरे वर्ष भर शाहज़ादा सलीम अपना दरबार इलाहाबाद में लगाता रहा तथा अपने अधीन किए गए प्रान्तों का स्वयं शाही बादशाह बना रहा। बादशाहत पर अपने दावे का बलपूर्वक प्रदर्शन उसने सोने और तांबे के सिक्के चलाकर किया और उसने उन दोनों सिक्कों के नमूने अकबर के पास भेजने की धृष्टता की। अकबर के साथ सन्धि-समझौते की बात करने के लिये अपने दूत के रूप में उसने अपने सहायक दोस्त मुहम्मद को काबुल भेजा।" पृष्ठ २३७ पर स्मिथ हमें बताता है कि 'यदि जहाँगीर का विद्रोह सफल हो जाता तो उसके पिता की मृत्यु निश्चित परिणाम था।' अकबर की मृत्यु से सम्बन्धित पृष्ठ २३२ पर दी गई पदटीप में कहा गया है कि 'यह निश्चित है कि जहाँगीर ने अत्यन्त उग्रतापूर्वक अपने पिता की मृत्यु की कामना की थी।'

पृष्ठ १९१ पर पदटीप में कहा गया है 'सन् १५९१ में ही जब अकबर पेट-दर्द एवं मरोड़ से पीड़ित था, उसने अपना सन्देह स्पष्ट किया था कि हो सकता है उसके बड़े लड़के ने उसे जहर दे दिया हो। ताज की इन्तज़ार करते रहने से व्यग्र उसके लड़के ने तख्त के लिये अकबर के विरुद्ध की जाने वाली लड़ाई में पुर्तगाली सहायता उपलब्ध करने की कामना की थी।'

पृष्ठ २७६ पर स्मिथ पाठक को बताता है, 'अकबर के सम्मुख प्रायः एक न एक विद्रोह उपस्थित रहता ही था। फौजदारों द्वारा संक्षेप में वर्णित तथा प्रान्तों में अव्यवस्था के फैलने के अलिखित अवसर अवश्य ही असंख्य रहे होंगे।'

अकबर के अपने समर्थकों में से, जिन्होंने एक-एक कर उसके विरुद्ध विद्रोह किया, बैरामखां, खान ज़मन, आसफ़ खां (उसका वित्त मन्त्री), शाह मन्सूर तथा सभी मिर्ज़ा लोग थे—वे मिर्ज़ा लोग जिनका शाही परिवार से रक्त का सम्बन्ध था।

पृष्ठ २५० पर स्मिथ ने इतिहासकार व्हीलर के इस कथन का उल्लेख किया है कि अकबर ने एक वैतनिक कर्मचारी रखा हुआ था, जिसका कर्त्तव्य अकबर से अति अप्रसन्न व्यक्ति को जहर खिला देना भर था। कुछ इतिहासकारों के अनुसार अकबर की मृत्यु ज़हर की उन गोलियों को भूल से स्वयं खा लेने से हुई थी, जो उसने मानसिंह के लिए रखी हुई थीं।

पृष्ठ २४६ पर स्मिथ ने उन लोगों की सूची दी है जिनको अकबर ने छद्म रूप में फांसी अथवा विष द्वारा मौत के घाट उतार दिया था : (१) सन् १५६५ में ग्वालियर में कामरान के बेटे की हत्या। (२) मक्का से वापस आए हुए मरव्वुए मुल्क और शेख अब्दुल नबी की अत्यन्त संदिग्धावस्था में मृत्यु। इक़बालनामा में स्पष्टोक्ति है कि शेख अब्दुल नबी को अकबर के आदेशों के पालन हेतु अबुल फ़ज़ल द्वारा मार डाला गया था। (३) उसी रूप में मासूम फरगुदी की सन्देहास्पद मृत्यु। (४) मीर मुअज्जुल मुल्क तथा एक और व्यक्ति की नाव 'दलदल में फंस जाने' के फलस्वरूप मृत्यु। (५) एक के बाद एक उन सभी मुल्लाओं को अकबर ने भेज दिया जिन पर उसे शक था। (६) रणथम्भौर दुर्ग में हाजी इब्राहीम की रहस्यमय मौत।

ऊपर दी गई सूची में बैराम खां और जयमल की मृत्यु भी सम्मिलित करना चाहूंगा, क्योंकि जयमल की पत्नी की ओर आकृष्ट हुए अकबर के इशारे पर ही यह मृत्युकांड घटा होगा। दोनों की मृत्यु के समय की परिस्थिति से ऐसा प्रतीत होता है।

अकबर द्वारा दिये गये अत्याचारपूर्ण दण्ड

अकबर द्वारा दिये गये दण्डों का स्मिथ ने पृष्ठ २५० पर अत्यन्त भयावह वर्णन किया है। मृत्यु दण्ड के साधनों में सम्मिलित प्रकारों में ये थे :— सूली पर चढ़ाना, हाथियों द्वारा पैरों तले रौंदवाना, गर्दन उड़ाना, सूली पर मृत्यु-दण्ड, लटकाना तथा अन्य प्रकार। दण्ड के छोटे रूपों में अंगच्छेदन तथा कोड़ों की भयानक मार का आदेश सामान्य रूप में दे दिया जाता था। दीवानी अथवा फौजदारी प्रक्रियाओं के कोई अभिलेख नहीं रखे जाते थे। न्यायाधीशों का कार्य सम्पन्न करने वाले व्यक्ति कुरान के नियमों का पालन करना ही पर्याप्त समझते थे। पुराने ढंग से निरपराधिता का निर्णय करने को अकबर ने प्रोत्साहित किया। दक्षिण केनसिंगटन में अकबरनामा के

समकालीन उदाहरणों में से एक में वधस्थल की भयानकता का मूर्त रूप चित्रित किया गया है।

अकबर का समकालीन मनसर्रट कहता है, "अकबर पर्याप्त कृपण तथा धन को बचाये रखने वाला था।" पृष्ठ २४३ पर स्मिथ कहता है, 'बादशाह स्वयं को सारी प्रजा के उत्तराधिकारी के रूप में देखता था तथा मृतक की सम्पूर्ण सम्पत्ति को निष्ठुरतापूर्वक ग्रहण कर लेता था। बादशाह की कृपा पर मृतक के परिवार को फिर से काम-धन्धा चालू करना पड़ता था। (पृष्ठ २५२) अकबर व्यापार का क्रियाशील व्यक्ति था, न कि भावुक जनसेवक। उसकी सम्पूर्ण नीति सत्ता और वैभव के अधिग्रहण के प्रयोजन से निर्दिष्ट होती थीं। जागीर, अश्वपालन आदि की सभी व्यवस्थाएं केवल एक ही प्रयोजन से की जाती थीं—ताज की शक्ति, यश तथा वैभव की अभिवृद्धि।"

यद्यपि अकबर की माता अकबर से केवल वर्ष भर पूर्व मरी थी—अर्थात् अकबर जब सब विजय कर चुका था तथा बहुत अधिक सूदखोरी और दमनचक्र से विपुल धन राशि संग्रहीत कर चुका था—तब भी वह उसकी मृत्यु-समय की इच्छा की अवमानना करने एवं उसकी समस्त सम्पत्ति हड़प कर जाने का लोभ संवरण न कर सका था। इसका वर्णन करते हुए स्मिथ ने पृष्ठ २३० पर कहा है, 'मृता अपने घर में एक बड़ा भारी कोष एवं वसीयतनामा छोड़ गयी थी, जिसमें आदेश था कि वह कोष उसके पुरुष वंशजों में बांट दिया जाय। उसकी सम्पत्ति को अधिग्रहण करने की अकबर की इच्छा इतनी तीव्र थी कि वह उसकी सम्पत्ति का लोभ संवरण न कर सका और मृत माँ की वसीयत की शर्तों की ओर ध्यान दिये बिना ही उसने सारी सम्पत्ति स्वयं अधिग्रहीत कर ली।"

मुगल बादशाह के नवरत्न

मुस्लिम-पूर्व भारतीय शासकों के वर्णनों से ग्रहीत यशगाथाओं से भारत के विदेशीय शासकों को विभूषित करने के लिए भारत के इतिहास में प्रारंभ से ही भरसक प्रयत्न किया गया है। ऐसी ही कथा का एक उल्लेखनीय उदाहरण अकबर के राज्य के वर्णन में मिलता है। महाराजा विक्रमादित्य के सम्बन्ध में जो कुछ कहा जाता है, उसकी नक़ल करते हुए भारत के मध्यकालीन इतिहास में तत्परतापूर्वक जोड़ दिया गया एक भ्रामक

तत्त्व यह है कि अकबर के पास भी ऐसे ही विशेष प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तियों का समूह था, जिन्हें अकबर के दरबार के 'नवरत्न' कहा जाता था। अकबर उन्हें मूर्खों के समूह से अधिक कुछ नहीं समझता था। यह अकबर द्वारा उल्लिखत उस विशिष्ट सन्दर्भ से स्पष्ट है जिसमें वह (पृष्ठ २५८) कहता है 'यह भगवान् की अनुकम्पा ही थी कि मुझे कोई योग्य मन्त्री न मिला। अन्यथा लोग यही समझते कि मेरे उपाय उन लोगों के द्वारा ही निर्धारित किये गये थे।'

इतना ही नहीं, इतने अधिक प्रचारित व्यक्ति भी किसी योग्य न थे। जैसा कि हम पहले ही देख चुके हैं, टोडरमल जनता से धन वसूल करने की उस प्रणाली के निर्माण में लगा हुआ था जिसमें वसूली के लिये कोड़े लगाए जाते थे, अन्यथा अपनी पत्नी तथा बच्चे बेचने पड़ते थे। अबुल फ़ज़ल 'निर्लज्ज चापलूस' की प्रसिद्धि प्राप्त था और स्वयं शाहज़ादा सलीम द्वारा मरवा डाला गया था। अकालमृत्यु प्राप्त फ़ैज़ी मामूली-सा कवि था जिसको एक ऐसे दरबार में ढकेल दिया गया था जहाँ परले दर्जे की परान्नभोजी चापलूसी प्रचलित थी। उसके सम्बन्ध में स्मिथ ने पृष्ठ ३०१-३०२ पर कहा है, 'बलोचमन ने कहा है कि दिल्ली के अमीर खुसरो के पश्चात् मुहम्मदी भारत में फ़ैज़ी से बढ़कर 'कोई अन्य कवि नहीं है। बलोचमन के निर्णय की न्याय्यता को स्वीकार करते हुए मैं केवल यही कह सकता हूँ कि मुहम्मदी भारत के अन्य कवियों का स्तर अवश्य ही बहुत निम्न रहा होगा।' बीरबल युद्ध में हत हुआ। विचार किया जाता है कि उसे एक जागीर दी गई थी, जिसका सुखोपभोग उसे कभी प्राप्त नहीं हुआ। उसके नाम पर सुप्रसिद्ध बुद्धिचातुर्य, हास्य-व्यंग्य एवं हाज़िरजवाबी की कथाएं वास्तव में किसी अज्ञात व्यक्ति का कला-कौशल है जो बीरबल के नाम एवं दरबार-संगति के नाम का लाभ उठाता था। तथाकथित वित्त मन्त्री शाह मंसूर की हत्या तो स्वयं अबुल फ़ज़ल ने अकबर के ही आदेश पर की थी। इस प्रकार प्रारम्भ से अन्त तक यह एक ऐसी दुःखान्त कथा है कि ये सुप्रचारित नवरत्न ऐसे असहाय व्यक्ति सिद्ध होते हैं, जो एक भ्रष्ट एवं दमनकारी प्रशासन के नारकीय यन्त्र मशीनी पुरज़े थे।

प्रमुख हिन्दुओं को विनष्ट किया गया

अपनी महिलाओं, पुत्रों तथा भाई-भतीजों की बड़ी संख्या अकबर की सेवा में नियुक्त कर देने के पश्चात भी बदले में निन्द्य व्यवहार प्राप्त होने

से अपनी विपन्न स्थिति से क्लान्त हो राजा भगवान्दास ने एक बार स्वयं ही अपने छुरा भोंक लिया था। शराब के नशे में मस्त अकबर द्वारा एक बार मानसिंह का गला दबाया गया था और फिर ज़हर भी खिलाया जाना था, किन्तु भूल से अकबर ही स्वयं वे गोलियाँ खा बैठा। मानसिंह की बहिन मानबाई, पूर्ण सम्भावना यह है कि, मार डाली गई थी, क्योंकि जहाँगीरनामा के एक संस्करण में कहा गया है कि उसने तीन दिन तक अनशन किया और मर गई, किन्तु दूसरे संस्करण में कहा गया है कि उसने विष खा लिया और मर गई। यह भलीभांति ज्ञात है कि किसी को मारने के लिये तीन दिन का अनशन पर्याप्त नहीं है। इसके साथ ही जहाँगीरनामा स्वयं भी झूठ का पिटारा कुख्यात है। स्वयं जहाँगीर भी अत्यन्त क्रूर तथा कुमन्त्रणाकारी बादशाह माना जाता है, जिसने अपने बाप को ज़हर दिया, नूरजहाँ के प्रथम पति शेर अफगन को मरवा डाला तथा जो जीवित व्यक्ति की खाल खिंचवाने के दृश्य को अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक देख सकता था।

अकबर के दरबार के एक चित्रकार दसवन्त ने अपनी हत्या छुरा भोंक कर ली थी। हिन्दुओं द्वारा ऐसी समस्त आत्महत्याएँ तत्कालीन मुस्लिम अभिलेखों में पागलपन के दौरों में की गई वर्णित हैं। यह वर्णन दूसरे रूप में शब्दशः सत्य है अर्थात् मुगल दरबारों में स्थिति इतनी असह्य थी कि अपने जीवन, सम्मान, महिलाओं, घर की पवित्रता तथा धार्मिक मान्यताओं के दलन से विक्षुब्ध हिन्दू लोग भग्नाशा, पागलपन तथा मृत्यु को प्राप्त होते थे। प्रजा की खाल उतार लेने वाली कर-व्यवस्था की रचना कर टोडरमल ने यद्यपि अपनी आत्मा को अकबर के हाथों बेच दिया था, तथापि उसके भी उस पूजा-स्थल को (अकबर द्वारा) हटवा दिया गया, जिसमें वे मूर्तियाँ सम्मिलित थीं, जिनकी वह पूजा करता था और जिनके प्रति अत्यन्त श्रद्धा रखता था। उन दिनों के रूढ़िगत हिन्दू को जब कि स्वयं उसके घरेलू लोग भी बिना स्नान किये तथा बिना पवित्र परिधान धारण किये मूर्तियों का स्पर्श नहीं कर सकते थे, तब मूर्ति-पूजा के विरोधी मुस्लिमों द्वारा बिना आगा-पीछा सोचे उन मूर्तियों का हटा दिया जाना मृत्यु समान ही था। फिर भी ऐसे कार्य अकबर द्वारा करवाये जाते थे। इनके शिकार होने से टोडरमल जैसे व्यक्ति भी अछूते न रहे थे, जिन्होंने अकबर की सेवा में अपना सम्पूर्ण सम्मान गिरवी रख दिया था तथा उसको गंवा भी बैठे थे। इसी

पर विक्षुब्ध हो कर टोडरमल ने त्यागपत्र दे दिया था और वह बनारस चला गया था।

अकबर ने प्रयाग तथा बनारस को ध्वस्त किया

५८वें पृष्ठ पर स्मिथ कहता है, "अकबर तब प्रयाग की ओर गया और वहाँ से बनारस, जिसको उसने पूर्ण रूप से ध्वस्त कर दिया, क्योंकि लोग इतने उत्तेजित थे कि उन्होंने अपने द्वार बन्द कर लिये थे।"

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रयाग में नदी के घाट तथा पुराने भवन क्यों नहीं हैं। आज प्रयाग (इलाहाबाद) में जो कुछ है, अविवक्ताओं के विक्टोरियन बंगले ही हैं। उनके अतिरिक्त इलाहबाद पूर्ण रूप से उजाड़ दिखाई देता है। इस बात पर बल देने की आवश्यकता नहीं है कि पुरानी पुण्य नगरी होने के कारण भव्य किले के साथ प्रवाहित होने वाली यमुना और गंगा के दोनों ओर के तटों पर सुन्दरतम तथा ऊँचे-ऊँचे घाट थे। बनारस में बने घाटों की छटा को निष्प्रभ करने वाले प्रयाग स्थित भव्य उच्च घाटों को धूलि-धूसरित करने का पूर्ण कलंक अकबर के माथे पर ही लगेगा। यह भी सम्भव है कि प्रचलित विश्वास के विपरीत बनारस स्थित प्रसिद्ध काशी विश्वनाथ मन्दिर सबसे पहले अकबर द्वारा भ्रष्ट किया गया, जब कि उसने वहाँ की जनता से भीषण बदला लिया। तथ्य रूप में बदले का भी कोई प्रश्न नहीं उठता। राजपरिवार के प्रति अनन्य भक्ति के लिये भारतीय लोग परम्परागत रूप से विख्यात हैं। यदि अकबर की यात्रा अनिष्ट-शून्य रही होती, तो उसने बनारस निवासियों के हृदय को गहनतम श्रद्धा के अतिरिक्त अन्य भावनाओं का अवसर नहीं दिया होता। किन्तु इसी एक तथ्य से कि अकबर के विरुद्ध उन निवासियों ने अपने-अपने द्वार बन्द कर लिये थे, यह सिद्ध होता है कि बनारस में अकबर का प्रवेश अवश्य ही लम्पटता तथा सर्वग्राहिता के प्रयोजन से हुआ होगा।

दासता अपने निकृष्टतम रूप में थी

हम पहले ही देख चुके हैं कि अकबर अपने सम्मुख सभी लोगों के पूर्ण पराभव का आग्रही था। अपने पैरों को धोने के बाद उस जल को अन्य लोगों को पीने के लिये उसने जनता को बाध्य किया। गुप्त प्रार्थना के पश्चात् बचा हुआ जल भी उसने अन्य लोगों को पिलाया। तत्कालीन एक अंग्रेज प्रवासी राल्फ फिच ने उल्लेख किया है कि अकबर के दरबार के अंग्रेज जौहरी विलि-

यम लीहस को एक मकान और पांच गुलाम दिए गए।" पृष्ठ १४७ पर स्मिथ ने कहा है : ईसाई पादरी अक्वावीवा को, जब तक वह दरबार की सेवा में रहा, केवला निर्वाह योग्य रसद ही मिली। इसलिये विदा होते समय जो विशेष अनुग्रह उसने अकबर से चाहा वह था एक रूसी गुलाम परिवार को अपने साथ ले जाना (जिनमें पिता, माता, दो बच्चे और कुछ विशेष व्यक्ति थे, जो सदैव मुसलमानों में ही से थे यद्यपि नाममात्र को वे लोग ईसाई होते थे)।" यह प्रदर्शित करता है कि अकबर ने विभिन्न राष्ट्रीयता वाले असंख्य लोग गुलाम बना रखे थे। पृष्ठ १५६ पर स्मिथ दावे के साथ कहता है कि 'सन् १५८१-८२ के वर्षों में स्पष्ट रूप में नयी पद्धति का विरोध करने वाले शेखों और फ़क़ीरों की एक भारी संख्या को अधिकतर कान्धार की ओर देश निकाला दे दिया गया जहाँ वे सम्भवत: गुलाम बनाकर रखे गये और उनके बदले में घोड़े खरीदे गये थे।" स्मिथ ने यह भी वर्णन किया है कि शाही दल के साथ-साथ चलने वाले हरम की स्त्रियाँ किस प्रकार सुनहरी पिंजरों में बन्द रखी जाती थीं। यह भी सामान्य व्यवहार था कि युद्ध के पश्चात् बन्दी बनाये गये सभी लोगों को गुलाम समझा जाता था।

अकबर द्वारा व्यवहृत तथा जिससे अत्यन्त रोष उत्पन्न हो गया था, वह दासता का ऐसा विचित्र प्रकार था जिसमें प्रत्येक घोड़े के माथे पर एक फूल लगाना पड़ता था। इस प्रकार जिस भी किसी के पास फूल लगा हुआ घोड़ा होता था, वह स्वतः अकबर की अधीनता में आ जाता था। राज्य भर में जहाँ भी कहीं घोड़े पाये जाते थे वे चिह्नित कर दिये जाते थे। इस प्रकार घोड़ा रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति के सम्मुख एक ओर गहरा कुआं और दूसरी ओर भयंकर खाई थी। यदि वह व्यक्ति अकबर की पराधीनता से मुक्त होना चाहता था, तो उसके सम्मुख एक ही मार्ग था कि वह घोड़े को छोड़ दे। ऐसा करने पर उन आतंकमय दिनों में उसे अपने एकमात्र सहारे और साधन को खो देना होता था और यदि वह व्यक्ति घोड़ा रखता था, तो उसके घोड़े के मस्तक पर का निशान उसको सदैव स्मरण दिलाता था कि अत्यन्त क्रूरतापूर्ण धूर्त्तता के साथ वह व्यावहारिक अर्धदासत्व का शिकार हो चुका था।

भयानक दुर्भिक्ष

अकबर के विधिहीन तथा दमनकारी शासन ने अभूतपूर्व अकाल प्रस्तुत किये। सन् १५५६-५६ में दिल्ली विध्वंस्त हो गई तथा असंख्य मौतें हुई

थीं (पृष्ठ २८८)। वदायूनी ने स्वयं अपनी आँखों से देखा था कि आदमी आदमी को ही मार कर खा रहा था और दुर्भिक्ष-पीड़ितों की आकृति इतनी वीभत्स हो चुकी थी कि कठिनाई से ही कोई उनकी ओर देख सकता था...सारा देश उजाड़ मरुस्थल वन चुका था और पृथ्वी को जोतने वाले लोग ही नहीं रहे थे...भारत के समृद्धतम प्रान्तों में से एक तथा दुर्भिक्ष की आशंका से सदैव अछूता रहने के लिये प्रशंसित गुजरात भी अकवर की महत्ता के मिथ्यावाद का एक और प्रशंसात्मक संलाप होगा। यह उक्ति कि यदि अकवर 'महान्' न होता, तो उसने इतनी दीर्घावधि (सन् १५५६-१६०५) तक राज्य न किया होता, जो कि विद्वान् प्राध्यापक की मूल तथा नीति-विषयक धारणा प्रतीत होती है—अत्यन्त भ्रामक तथा तर्कहीन है।

अंग्रेजी लेखक : श्री पुरुषोत्तम नागेश ओक, एम० ए०, एलएल० बी०
अध्यक्ष, भारतीय इतिहास पुनर्लेखन संस्थान,
एन-१२८, ग्रेटर कैलाश, नई दिल्ली-१४

हिन्दी अनुवादक : श्री जगमोहन राव भट्ट, एम० ए०, साहित्यरत्न,
५१९८/१, बालकृष्ण गली, बसन्त मार्ग, पहाड़गज,
नई दिल्ली-१

जाग, सोए देश !

मेरे देश के सोए वीर, यदि आज भी न जागे तो यहाँ कुछ भी न बचेगा। सब तुले हैं राम-कृष्ण का पावन नाम मिटाने को—आग लगा दी है भारतीय संस्कृति में।

धर्म और मानवता पर संकट है। जिन्होंने भारत के टुकड़े कराये, जिन्होंने खून बहाया लाखों ललनाओं का, लाज लूटी माँ-बहनों की वे ही, हाँ वे ही, ऋषि मुनियों की धरती को नरक बनाने पर तुले हैं।

मैं राम-कृष्ण के अनुयायी वीरों को जगाना चाहता हूँ। मैं उनके हाथ में धर्म और शक्ति का सुदर्शन चक्र देखना चाहता हूँ।

—भारतेन्द्रनाथ

आचार्य वीरेन्द्र शास्त्री, एम० ए०

काशी का शास्त्रार्थ

प्रथम दृश्य

(काशी नरेश का महल, चार पण्डित सामने बैठे हैं)

काशी नरेश—पूज्य महानुभाव, मैंने स्वयं चाहा कि स्वामी दयानन्द सरस्वती के दर्शन करूँ, किन्तु आपने उन से मिलने ही नहीं दिया। मैंने स्वामीजी को बुलाया भी, पर वह नहीं आये। क्या करूँ?

एक पण्डित—महाराज, आपका स्वामी दयानन्द से मिलना नहीं हो सकता आप राजा हैं और दयानन्द महाराज हैं।

काशी नरेश—फिर भी मैं स्वामी दयानन्द के लिए आठ आने रोज भेजा दिया करता हूँ। आखिर हैं तो वह भी ब्राह्मण और संन्यासी।

दूसरा पण्डित—महाराज, वह तो कोलाहल स्वामी है। अपना व्याख्यान आरम्भ करते ही जरा भी कहीं कोई बात करता दिखाई देता है कि वह बड़े वेग से चिल्ला उठता है—"क्या कोलाहल मचाया है? शान्त रहो।" उसकी गर्जना सुनकर दिल दहलने लगता है। वह तो सरकारी गुप्तचर है। मूर्ति पूजा का खण्डन करके सबको क्रिष्टान बनाना चाहता है।

काशी नरेश—पर आप लोग उसका मुकाबला क्यों नहीं करते? आप लोग लाखों रुपये इस मूर्ति पूजा पर व्यय करा देते हैं। आप ही मूर्ति पूजा का प्रमाण भी दीजिए।

तीसरा पण्डित—महाराज, हमें स्वयं इसकी बड़ी चिन्ता है। हमने अपने शिष्यों को उसके व्याख्यान सुनने को भेजा और स्वयं भी छिपकर उसकी बातें सुनने के लिए गए। पर वह तो केवल वेद पर बोलता है और मूर्ति पूजा पर वेदों का ही प्रमाण मांगता है।

काशी नरेश—तो क्यों नहीं वेदों का प्रमाण देकर उसे हराते?

चौथा पण्डित—महाराज, क्या करें, वश नहीं चलता। हमने सब शास्त्र पढ़ हैं, परन्तु वेद पर उतना अधिकार नहीं। हमें आप केवल १५ दिन का समय

तैयारी के लिए दे दें। फिर हमारा शास्त्रार्थ देखें।

काशी नरेश—अच्छी बात है, आप तैयारी कीजिए। शास्त्रार्थ अवश्य होगा।

(पण्डितों का प्रस्थान। द्वारपाल की सूचना पर काशी नरेश की अनुमति से पण्डित ज्योतिःस्वरूप उदासीन का प्रवेश। प्रणाम आदि शिष्टाचार के पश्चात्)

काशी नरेश—कहिए पण्डित जी, स्वामी दयानन्द सरस्वती शास्त्रार्थ करेंगे ?

ज्योतिःस्वरूप—क्यों नहीं करेंगे महाराज, उनकी बात सच्ची है। यदि आपके पण्डित उनसे शास्त्रार्थ करना चाहते हैं तो पहले मुझसे ही कर लें।

काशी नरेश—नहीं, ऐसा नहीं। आप स्वामी जी से कह दें कि यदि वह मूर्ति पूजा का खण्डन छोड़ दें तो मैं उनको गुरु मान कर १००) मासिक दिया करूंगा। जाइये। (ज्योतिषी का प्रस्थान)

(पण्डित सखाराम भट्ट का प्रवेश। प्रणाम आदि शिष्टाचार के पश्चात्)

काशी नरेश—कहिए भट्ट जी, शास्त्रार्थ की तैयारी तो पूरी है ना ?

भट्ट—महाराज तैयारी तो पूरी है, किन्तु आप वहां न जाइयेगा।

काशी नरेश—क्यों, क्या बात है ? दयानन्द सरस्वती ने शास्त्रार्थ की अवधि कम से कम पन्द्रह दिन रखने और मेरा सरस्वती भंडार शास्त्रार्थ स्थल पर रखने के लिए कहलाया था, पर मैंने स्वीकार नहीं किया। कलक्टर ने इतवार का दिन रखने को कहा था जिससे छुट्टी के दिन वह भी शास्त्रार्थ सुन सकें, पर मैंने अब बुधवार कार्तिक शुक्ल त्रयोदशी सं० १९२६ तदनुसार १६ नवम्बर १९५९ का दिन निश्चित कर दिया है।

भट्ट जी—तो क्या कलक्टर साहब नहीं आयेंगे ?

काशी नरेश—नहीं, उन्होंने कोतवाल को प्रबन्ध के लिए नियुक्त किया है। क्या आप दयानन्द को जानते हैं ?

भट्ट जी—दयानन्द को तो नहीं, उसके गुरु विरजानन्द को अवश्य जानता हूं। वह व्याकरण के सूर्य हैं। मैं उनकी परीक्षा के लिए मथुरा गया और उनके शिष्यों में छिपकर मैंने उनसे नाना प्रकार के विकट प्रश्न किये। पर उन सब के उत्तर सुनकर मैं तो चकित रह गया। हमारे पण्डित यहां शास्त्रार्थ में व्याकरण का पाण्डित्य दिखायेंगे और अपमानित होंगे। अतः मैं उनका साथ देने नहीं जाता। अच्छा, अब मैं चलता हूं। (प्रस्थान)

(पं० ढुंढीराज शास्त्री धर्माधिकारी और पंडित रामकृष्ण तांतिया का प्रवेश । प्रणाम के अनन्तर)

काशी नरेश—कहिए धर्माधिकारी जी, दयानन्द सरस्वती से प्रामाणिक ग्रंथों की सूची बनवा लाये ?

धर्माधिकारी—राजन्, पहले तो स्वामीजी ने मना किया पर जब कोतवाल साहब ने शास्त्रार्थ का निश्चय कराया, तब उन्होंने अपने प्रामागिक ग्रंथों की सूची लिखा दी है । तांतिया जी, सूची सुना दीजिए ।

ताँतिया—महाराज, सूची इस प्रकार है ।

चार वेद संहिताएँ—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्व वेद । ये स्वतः प्रमाण हैं और चार उपवेद (आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्वर्व वेद और अर्थ वेद) ६ वेदांग (न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा, वेदान्त) तथा मनुस्मृति की वेदानुकूल बातें प्रामाणिक हैं ।

काशी नरेश—अच्छा, बुधवार को दुर्गाकुण्ड के पास अमेठी नरेश श्री माधोसिंह के आनन्द बाग में दोपहर ३ बजे आप सभी उपस्थित होइये और उस ४५ वर्ष के दयानन्द सरस्वती को पराजित करने में अपना कौशल दिखाइये ।

(पट परिवर्तन)

दृश्य दो

आनन्द बाग के बरामदे में केवल दण्ड और कौपीनधारी स्वामी दयानन्द सरस्वती अकेले और उनके सम्मुख ४० पण्डित तथा १० निमन्त्रित प्रतिष्ठित व्यक्ति गोल आकार में बैठे हैं । स्वामी जी के पास ही सभापति के रूप में काशी नरेश ईश्वरीप्रसादनारायणसिंह जी और प्रबन्धककोतवाल पं० रघुनाथ प्रसाद बैठे हैं । दूर मैदान में ६० हजार श्रोता विराजमान हैं ।

स्वामी जी—कोतवाल साहब, पं० ज्योतिःस्वरूप उदासीन और परमहंस अन्दर क्यों नहीं आये । उन्हें बुला लीजिए ।

कोतवाल—अच्छा स्वामी जी महाराज, बुलवाता हूँ । (बाहर जाकर उन्हें साथ लाते हैं ।)

दो-तीन नंडित—(एक साथ) इन्हें बाहर ही दूर बिठाइये । यहाँ स्वामीजी के पास इनका क्या काम । (पण्डित उठाकर उन्हें दूर पर ही बिठा देते हैं ।)

काशी नरेश—पण्डितो, शास्त्रार्थ आरम्भ करो ।

स्वामी जी—क्या आप वेदों को प्रमाण मानते हैं ?

ताराचरण—सर्वदा, सर्वतः, सर्वथा ।

स्वामी जी—नारायण जी, यदि वेदों में मूर्ति पूजा की सिद्धि में कोई वेद मन्त्र हो तो मुझे दिखाइये ।

ताराचरण—क्या वेदों में यह लिखा है कि वेदों में लिखी बातों के अतिरिक्त अन्य किसी बात को प्रमाण न माना जाये ।

स्वामीजी—ताराचरण जी, आप मूर्ति पूजा की सिद्धि किसी वेद मन्त्र से कीजिए ।

ताराचरण—(मौन रहे ।)

प्रमोद दास मित्र—राजा साहब, प्रश्न का विषय बदलिये । दूसरे को नियुक्त कीजिए ।

स्वामी विशुद्धानन्द उठते हैं । उसी समय एक वृद्ध ब्राह्मण चिल्लाता है—

वृद्ध ब्राह्मण—यह स्वामी दयानन्द नास्तिक हैं, इसकी वाणी सुनना पाप है ।

स्वामी जी—कृपया एक-एक करके बोलिए ।

विशुद्धानंद—(शारीरिक सूत्र पढ़कर) यदि तुम सब शास्त्रों का मूल वेद में मानते हो तो बताओ कि वेद में यह सूत्र कहाँ पर है ।

स्वामी जी—वेद का पारायण करके बता सकता हूँ ।

विशुद्धानंद—क्या कहा ? जब सब वेद उपस्थित नहीं हैं तो फिर काशी में शास्त्रार्थ करने क्यों आये ?

स्वामी जी—विशुद्धानन्द जी, क्या आपको सब वेद उपस्थित हैं ?

विशुद्धानंद—(मौन बैठे रहते हैं ।)

बाल शास्त्री—हां, मुझे सब वेद कंठस्थ हैं ।

स्वामी जी—बाल शास्त्रीजी, आप मूर्ति पूजा को वेद में नहीं दिखा सकते, पर उसका करना धर्म समझते हैं तो आप धर्म का ही लक्षण बताइये ।

बाल शास्त्री—धारणाद् धर्म इत्याहुः धर्मो धारयते प्रजाः ।

स्वामी जी—कोई वेद मन्त्र बोलिए । आपको तो सब वेद कंठस्थ हैं ।

बाल शास्त्री—(चुप बैठे रहे—कोई वेद मन्त्र न बोल सके ।)

पं० शिवसहाय—मैं मानव धर्म शास्त्र से धर्म का लक्षण बताता हूँ—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः ।

धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम् ।।

स्वामी जी—पं० शिवसहाय जी, अब आप अधर्म का लक्षण करिये। (इस पर श्री शिवसहाय चुप रहते हैं। तब माधवाचार्य कुछ पुराने पन्ने हाथ में लेकर पढ़ने लगते हैं।)

माधवाचार्य—ये पन्ने वेद के हैं। प्रतिमा शब्द है, जिसका अर्थ मूर्ति है।

स्वामी जी—माधवाचार्य जी, न तो ये पन्ने वेद के हैं और न प्रतिमा शब्द का अर्थ मूर्ति पूजा ही है। इन पन्नों के किसी शब्द से मूर्ति पूजा सिद्ध नहीं होती।

माधवाचार्य—पुराणों में तो मूर्तिपूजा बताई गई है। पुराण भी प्रामाणिक हैं।

"ब्राह्मणानि इतिहासान् पुराणानि"

स्वामी जी—यहाँ पुराणि ब्राह्मणों का विशेषण है। कोई विशेष पुस्तक नहीं है। (इस पर पण्डित वामनाचार्य दो पन्ने लेकर उठते हैं और पढ़ते हैं।)

वामनाचार्य—यज्ञ समाप्तौ सत्यां दशमे दिवसे पुराणानां पाठं शृणुयात्" यहां तो पुराण शब्द विशेषण नहीं है। ये वेद के पन्ने हैं। (स्वामी जी उनके हाथ से पन्ने ले लेते हैं और देखने लगते हैं।)

स्वामी विशुद्धानंद—वेदों में यज्ञों का विधान है। यज्ञ देवताओं की पूजा है। वेदों के मन्त्र ही देवता हैं।

काशी नरेश—(भौंहें चढ़ाकर, जनता की तरफ अपने मुँह पर हाथ रख कर) यह क्या कह रहे हो, फिर मूर्ति पूजा कहां रही?

स्वामी जी—विशुद्धानन्द जी, यदि वेद मन्त्र ही देवता हैं तो फिर प्रतीक की उपासना कैसे होगी?

विशुद्धानंद—शालिग्राम आदि से।

स्वामी जी—ऐसा वेद में कहां लिखा है?

विशुद्धानंद—वेदों की बहुत-सी शाखायें हैं। क्या तुमने सब देखी हैं?

स्वामी जी—सब शाखाओं की संहिता तो एक ही है।

विशुद्धानन्द—दयानन्द, अभी तुम कुछ और पढ़ो।

स्वामी जी—विशुद्धानन्द जी, आप सब कुछ पढ़ चुके हैं?

विशुद्धानन्द—(हँस कर) हां सब पढ़ लिया है। दयानन्द, तुमने व्याकरण पढ़ा है?

स्वामी जी—हां, गुरु विरजानन्द के चरणों में बैठकर खूब व्याकरण पढ़ा है। विशुद्धानन्द जी, अगर आपने व्याकरण पढ़ा है तो बताइये कि व्याकरण में कल्म संज्ञा किसकी है।

(विशुद्धानन्द के चुप हो जाने पर बाल शास्त्री उठ खड़े हुए।)

बालशास्त्री—संज्ञा तो नहीं है, परन्तु महाभाष्यकार ने एक सूत्र में उपहास किया है।

स्वामी जी—बाल शास्त्री जी, बताइये यह कौन से सूत्र के भाष्य में है ?

(बाल शास्त्री के चुप रहने पर माधवाचार्य खड़े होते हैं।)

स्वामी जी—आप नहीं बता सकते तो मैं बताता हूँ। यह अष्टाध्यायी के प्रथम अध्याय के चतुर्थ पाठ के ५१वें सूत्र के महाभाष्य में है—

"विपरीतं तु यत्कर्म तत्कल्म कवयो विदुः।"

सन्ध्या के अन्धकार में लालटेन के धीमे प्रकाश में जब तक स्वामी जी पन्नों को पढ़कर कुछ कहना चाहते थे कि विशुद्धानन्द स्वामी जी की पीठ पर हाथ रखकर पराजित-पराजित कह कर तालियां पीटने लगते हैं और हर-हर विश्वेश्वर कहने लगते हैं। गुण्डे स्वामी जी पर ईंट-पत्थर बरसाने लगते हैं। (भीड़ में से गुण्डों के फेंके पत्थर स्वामी जी पर गिरते हैं। हर-हर महादेव और 'सनातन धर्म की जय के नारे सुनाई पड़ते हैं।

तीसरा दृश्य

(काशी नरेश का महल—काशी नरेश स्वयं राज सिंहासन पर बैठे और स्वामी जी को स्वर्ण सिंहासन पर बैठाया हुआ है। वह स्वामी जी के ग में अपने हाथों से जयमाला पहनाते हैं और चरणों का स्पर्श करते हैं।)

काशी नरेश—स्वामी जी, क्षमा कीजिए। मैं बहुत दिनों से मूर्ति पूजा करता आ रहा हूं। उसके प्रति मेरा अनुराग और श्रद्धा है। इसलिए आपके द्वारा उसका प्रतिवाद करने पर मुझे कष्ट हुआ। शास्त्रार्थ के समय यदि आप मेरे किसी आचरण से क्षुब्ध हुए हों तो मुझे क्षमा करें।

स्वामी जी—जाओ, क्षमा किया। किन्तु भविष्य में किसी के साथ ऐसा व्यवहार कभी न करना। मेरा आशीर्वाद है कि तुम्हारी सत्य पर अधिक से अधिक श्रद्धा हो। (परदा गिरता है)

—:०:—

एक महान् ग्रंथ

जिसे स्व० डा० संपूर्णानंद, राज्यपाल राजस्थान ने तैयार करवाया था ।

प्रसिद्ध विद्वान पं० वीरसेन जी की अमरकृति

वैदिक सम्पदा

१००० पृष्ठ से अधिक की अनुपम सामग्री

प्रकाशन के लिए

कम से कम ५०००)

सहयोग चाहिये

दानी का चित्र भी दिया जा सकेगा

वेद का प्रकाश फैलाने के लिए महान ग्रन्थ प्रसार के लिए बाट देख रहा है ।

—भारतेन्द्र नाथ

जन-ज्ञान (मासिक)
१५६७ हरध्यान सिंह मार्ग
करौल बाग नई दिल्ली-५

मार्च १९७१
चैत्र संवत् २०२७

Regd. No D
1631

धर्मवीर लेखराम को छुरा मारते हुए हत्यारा